...सिद्धान्तो और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

रामनवमी
विशेषांक

...: योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

अप्रैल, 1997 अंक 1

सिद्धगुफा प्रकाशन, संवाई (आगरा) – 283 202

संस्थापक :
योग योगेश्वर अनन्त श्री
चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा

संयुक्त सम्पादक :
श्री भुवनेन्द्र झा

प्रबन्ध सम्पादक :
श्री चन्द्रशेखर 'दिव्य'
आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा
श्री गोविन्द सोनी
ब्र० राजेशचन्द्र शर्मा

अप्रैल 1997

इस अंक के लेख

- अदीन ही परमेश्वर है 1
- समर्पण का फल (विशेष लेख) 2
  -योगिराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज
- श्री सद्गुरु स्तोत्राष्टकम् 4
  -योगिराज श्री नृसिंह मूर्ति जी महाराज
- समत्वं योग उच्यते 6
  -आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा
- अजपा गायत्री की उपासना पद्धति 9
  -आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा
- किमस्ति योगः (कविता) 16
  -श्री द्वारिका प्रसाद शर्मा
- मन्त्रयोग विज्ञान 18
  -श्री पूर्णचन्द्र पन्त
- सिद्धपीठ (कामरूप) कामाख्या 23
  पं० राजेन्द्र प्रसाद पाठक
- श्री मोहनलाल पर कृपा 28
  -श्री केशव देव उपाध्याय
- जीने की कला 33
  -श्री विष्णुप्रसाद व्यास
- षट् दर्शनों में योग का महत्व 37
  -डॉ० ऋषिराम शर्मा एम. एस-सी., पी-एच. डी.

वार्षिक शुल्क 65/- रु० । एक प्रति 6/ रु०
द्विवार्षिक शुल्क 120/- रु० । आजीवन शुल्क 651/- रु०

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षणकेन्द्र संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 30
अंक 1

अप्रैल
1997

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुविषदं योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अदीन ही परमेश्वर है

शय्या शैल शिला **गृहं गिरिगुहा वस्त्रं तरुणां त्वचं।**
सारंगा **सुहृदो** ननुक्षितिरुहा **वृन्ति : फलैः** कोमलेः।।
येषां निर्भ्फरमम्बुपानमुचितं **रत्येव** विद्यांगना।
मन्ये ते परमेश्वराः शिरसिर्यर्वद्धो **न** सेवाञ्जलिः।।

अर्थात्

जिनकी शय्या शैल शिला है। पर्वतों की गुफा ही घर है। वस्त्र वृक्षों की छाल है। जंगली हिरन ही मित्र है। वृक्षों के कोमल फल ही जिनका गुजारा है। जो हमेशा झरनों का जल पीते हैं। विद्यारूपी आंगन में ही जिनकी रति है। जिन्होंने दीन होकर अपने सिर पर सेवांजलिः धारण नहीं की है, वे लोग सदा अदीन हैं और सर्वथा परमेश्वर के ही स्वरूप हैं।

विशेष लेख

समर्पण का फल

योगिराज अनन्त श्री चन्द्र मोहन जी महाराज

अखिलात्मा भगवान ने गीता में समर्पण की बात बार-बार समझाई है। भगवान कहते हैं **'मन्मना भव'** मेरे में मन वाला बनो। भगवान के चिन्तन से हम भगवान के मन वाले हो जायेंगे। छोटी शक्ति बड़ी शक्ति में लय हो जाया करती है। हमारे नासिका रन्ध्रों से निकलने वाले परमाणु भगवान कृष्ण के परमाणुओं के अन्दर मिल जायेंगे। जिस समय हमारे परमाणु भगवान कृष्ण के तेज के अन्दर लय हो जायेंगे तो हमारा मन उनका मन बन जायेगा। हमारे मन में वही विचार आने लगेंगे जो भगवान चाहते हैं। यही है **'मन्मना भव'**। मन्मना भव हो जाने पर **'मामेवैष्यसि'** अर्जुन तू मुझे ही प्राप्त करेगा-मेरे पास ही पहुंच जायेगा। यह मैं सत्य कह रहा हूं क्योंकि तू मेरा प्यारा है। **'सर्वधर्मान परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज'** सर्व कर्मकाण्डों को छोड़कर मेरी शरण हो जाओ। तुझे सब पापों से मुक्त कर दूंगा। चिन्ता मत कर। श्री भगवान ने पहले भी **'यद करोषि यदश्नासि'** आदि वचनों से आत्मसमर्पण की बात अर्जुन को समझाई। हमारे प्राचीन सिद्धान्त के अनुसार हर व्यक्ति भगवान को भोग लगाकर ही इसे प्रसाद रूप में ग्रहण करता है। ऐसा करने से उसके अन्दर खुदी का भाव मिट जायेगा। गुरुदेव के चरण कमलों में जिन का समर्पण है। उनका समर्पण परासत्ता का समर्पण है। वह किसी भी प्रकार से रहे निष्काम कर्मयोग को प्राप्त हो जायेगा और शनैः शनैः समाधि को प्राप्त हो जायेगा।

श्री प्रभु जी के चरण-कमलों से सम्बन्धित एक घटना बतलाता हूं। नैपाल के जंगलों में एक बूढ़ा व्यक्ति श्री प्रभु जी की खूब सेवा किया करता था। उनके साथ में हरिहरानन्द तथा अन्य गुरुभाई भी रहा करते थे। वे लोग उस बूढ़े से ईर्ष्या किया करते थे। जो ज्यादा सेवा करता है उस से अन्य लोग चिढ़ते है यह स्वाभाविक बात है। उन्होंने सोचा-हम इस बूढ़े को ज्ञानगिर अघोरी के पास शीशगिर की ओर भेज देंगे वहाँ ज्ञानगिर इसको यन्त्र पर चढ़ा देगा तथा खा लेगा और हमें सेवा का मौका मिल जायेगा। इस भावना से वे उसे वहाँ भेजना चाहते थे। मनुष्य अपनी बुद्धि से सोच लेता है कि प्रभुजी को इस बात का क्या पता चलेगा। बूढ़ा अघोरी द्वारा मारा जायेगा और हमें सेवा का मौका मिलेगा। श्री प्रभुजी हम पर खुश हो जायेंगे। उन लोगों ने चालाकी की। श्री प्रभु जी घट-घट के जानने वाले हैं। दण्डी स्वामी और अन्य लोग कहने लगे- कन्दमूल तो शीशगिर में अधिक मिलते है परन्तु वहाँ ज्ञानगिर अघोरी रहता है वह आदमी को खा जाता है। वह बूढ़ा कहने लगा प्रभुजी- वहां पर मैं जाऊंगा और कन्दमूल खोद लाऊँगा। प्रभुजी कहने लगे-नहीं बेटा-तुम दूसरी दिशा में चले जाओ लेकिन बूढ़े ने उधर ही जाने का हठ किया। बूढ़ा वहां चला गया-वहां उसे अघोरी मिल गया-ज्ञानगिर उसको देखकर सोचने लगा-पला-पलाया शिकार है दो-तीन दिन का भोजन तो हो ही जायेगा-ज्ञानगिर यह सोचकर उसे यन्त्र पर चढ़ाने ही वाले थे कि इतने में आकाशवाणी होती है-ज्ञानगिर! पलापलाया शिकार है दो तीन दिन का भोजन हो ही जायेगा। किन्तु

यह देख लेना यह किसका बालक है सोच-समझकर हाथ लगाना। ज्ञानगिर ने देखा- कि श्री प्रभुजी का अखण्ड मण्डलाकार तेज है और उनका हाथ उसके सिर पर है। उसकी हिम्मत नहीं हुई उसे खाने की। अघोरियों का नियम होता है या तो वे शिकार को खा लेते हैं और यदि ऐसा न कर सकें तो उसे वरदान देते हैं। अघोरी ने बूढे से कहा-तेरे कर्म तो बहुत ऊँचे हैं। तेरे रक्षक तो सर्व शक्तिमान है- मार हम तुझे सकते नहीं। अब तू वर माँग हमारा यही नियम है। अब बोल तू क्या चाहता है? बूढा कहने लगा। मैं तुझ से क्या मागूँगा? तू माँग मुझ से-तू क्या चाहता है? तू स्वयं मांगता है। ज्ञानगिर को यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। वह उसके शरीर में सिद्धियों के स्थानों को देखने लगा कि क्या कोई सिद्धि भी इसके पास देने वाली है। उसने देखा कि कोई सिद्धि तो नहीं है किन्तु फिर भी प्रभु जी के तेज की ओर आकृष्ट हुआ। देखा- ये कह रहे है बेटा- तू इसके लिये मुख से जो भी कहेगा वही हो जायेगा। तू दण्ड देना चाहेगा तो दण्ड मिल जायेगा तू इसे योगी बनाना चाहेगा तो यह योगी हो जायेगा- तेरे मुख से निकलते ही तत्क्षण वैसा ही हो जायेगा। इतने में ज्ञानगिर-उससे कहने लगा - यदि तू कुछ भी नहीं मांगेगा- तो भी मैंने तुझे वाक्‌सिद्धि दे दी। बूढे ने कहा - नहीं, मुझे तेरी वाक्‌सिद्धि नहीं चाहिये। किन्तु अघोरी कहने लगा- मैंने अपने नियम से यह सिद्धि तुझे दे ही दी है। वह बूढा लौटकर श्री प्रभुजी के पास आ रहा था कि रास्ते में उसे गुरुभाई मिल गये और कहने लगे। चौरासी लाख मोल लाया कि नहीं। तू किसी को वरदान देगा किसी को शाप देगा इससे तू अवश्य ही चौरासी के चक्कर में पड़ जायेगा। बूढा बेचारा सरल था। कहने लगा- अच्छा ऐसा होगा। उसने कन्दमूल का गट्ठर उन्हें देते हुये कहा-अच्छा भाई! श्री प्रभुजी के चरणों में मेरी यह अन्तिम सेवा है। मैं अब वाक्‌सिद्धि और संकल्पसिद्धि को खोने के लिये जाता हूँ। उन्हें खोकर दूसरा जन्म लेकर 10-15 साल में फिर श्री प्रभुजी के चरणों में पहुँच जाऊंगा। बस! यह मेरी अन्तिम सेवा श्री प्रभुजी के चरणों में अर्पित कर देना। वे लोग श्री प्रभुजी के पास पहुँचे और बूढे की सारी बात श्री प्रभुजी को बता दी। प्रभुजी सोचने लगे - हमारा बच्चा इस तरह से मर जायेगा। यह बूढा वहां से चला गया था और अपनी वाक्‌सिद्धि को खोने के लिये पहाड़ की चोटी से गिरकर शरीर को नष्ट करने का विचार कर लिया। पहाड़ की चोटी पर पहुँच कर जब वह नीचे को गिरने ही वाला था कि श्री प्रभुजी वहीं प्रकट हो गये और कहने लगे - तू अपना शरीर क्यों नष्ट करना चाहता है। वह कहने लगा-प्रभुजी! वाक्‌सिद्धि को नष्ट करने के लिये एवं पुण्य-पाप से बचने के लिये ऐसा कर रहा हूँ। श्री प्रभुजी कहने लगे-उसने सिद्धि दी-हमने ले ली। हमने स्वयं छीन ली है। तेरे कहने से किसी का न भला होगा न बुरा - चाहे किसी का कहकर देख ले। हम जो चाहेंगे वह होगा, तेरे चाहने से कुछ नहीं होगा। श्री प्रभुजी उस पर प्रसन्न हो गये और कहने लगे।हमने तुझे पूर्ण भूत जयी सिद्ध बना दिया। एक बार कृपा की सिद्ध योगी बना दिया। वह बूढा उस पहाड़ से फिर प्रभु जी के स्थान पर पहुँच गया। गुरुभाई सोचने लगे-यह फिर आ गया। श्री प्रभुजी कहने लगे - अरे, तुम लोग इसके लिये क्या सोच रहे हो? यह तो सिद्ध हो गया है। यह अमर हो गया है। वे लोग कहने लगे। प्रभुजी! इस की वाक्‌सिद्धि! प्रभुजी कहने लगे- यह तो हमने छीन ली है। यह फल होता है गुरुदेव में आत्म समर्पण का! श्री प्रभुजी ने उसे पूर्ण सिद्धयोगी बना दिया। वह भी शीशगिर के पहाड़ पर समाधिस्थ है। □□□

श्री सद्गुरु स्तोत्राष्टकम्

योगिराज श्री नृसिंह मूर्ति जी महाराज

श्री माता परमेश्वरी भगवती श्री राज - राजेश्वरी।।
भक्तानामवनाय सद्गुरुतनुं धृत्वाऽनुगहात्यलम्।।
वादृकफ श्री परमेश्वरी परशिवाऽभिन्नात्मचिद्विग्रहं
वन्दे सद्गुरु सार्वभौम मनिशं श्री रामलाल प्रभुम्।।1।।

अर्थ - निर्गुण ब्रह्म का सगुण विग्रह धारण करने वाली परा आदि शक्ति ही जो आत्म-तत्व से अभिन्न है एवं नित्य चेतन है वही भक्तों की रक्षा के लिए परम् अनुग्रह को धारण करके सर्वत्र व्यापक सद्गुरु तत्व में प्रगट हुऐ प्रभु श्री रामलालजी को मैं अहर्निश प्रणाम करता हूँ।

योगज्ञानमयेन दिव्यवपुषा श्रीदक्षिणामूर्तिना
रुपेणोपदिदेश योगममलं ज्ञानं मुनिभ्यः
पुरातं लोकानुजिघृक्षया कलयुगे
घोरेऽवतीर्ण विभुं वन्दे सद्गुरुं
सार्वभौममनिशं श्री रामलाल प्रभुम्।।2।।

अर्थ - जिन्होंने दक्षिणामूर्ति के रूप से योग ज्ञानमय दिव्य स्वरूप धारण कर पहले समय में मुनियों को पवित्र योग का उपदेश दिया वही इस घोर कलिकाल में परम् लोकानुग्रहहित अवतार लेने वाले सर्वव्यापक परम सद्गुरुतत्व श्री रामलाल जी को मैं अहर्निश प्रणाम करता हूँ।

प्राक सृष्टेर्हृतवेद राशिमसुरं हत्वा समुद्रान्तरे।।
प्रत्यानीय विरिञ्चयेऽघनिगमान् दत्वाऽनुजग्राहयः।।
ज्ञानानन्दमयेन निर्मलहयग्रीव स्वरूपेण तं।।
वन्दे सद्गुरु सार्वभौममनिशं श्री रामलाल प्रभुम्।।3।।

अर्थ - जिन्होंने ज्ञानानन्दमय हयग्रीव स्वरूप को धारणकर सृष्टि के पहले वेदों का हरण करने वाले राक्षस को समुद्र में मार करके व वेदों को लाकर पुनः ब्रह्मा जी को सौंप दिया उन्हीं सर्वव्यापक परम् सद्गुरु तत्व श्री रामलाल जी को मैं अहर्निश प्रणाम करता हूँ।

श्री माता पर देवता हरिहर ब्रह्मादयो देवताः।
यस्यांऽशाः परिपालयन्ति जगतीं ब्रह्मैव तन्निर्गुणम्।।
दिव्यं सद्गुरु तत्वमित्यभिहितं तन्मूर्तिरूपं विभुं।
वन्दे सद्गुरु सार्वभौममनिशं श्री रामलाल प्रभुम्।।4।।

अर्थ - आदि शक्ति पर देवता निर्गुण ब्रह्म के सगुण अंश ब्रह्मादि देवता जो जगत का पालन पोषण करते हैं वही परतत्व सद्गुरुतत्त्व कहा गया है उसी सर्वव्यापक परम सद्गुरुतत्त्व श्री रामलाल जी को मैं अहर्निश प्रणाम करता हूं।

आदौ ब्रह्म सुनिर्गुणं सगुणमप्याद्यंपरं
सद्गुरोस्तत्त्वं तत्व समुद्‌गता किलपराशक्ति स्ततोऽजादयः।।
दिवयं सदगुरु तत्त्वमादिस गुणब्रह्मैव तदद्रूपणं।
वन्दे सद्‌गुरु सार्वभौममनिशं श्री रामलाल प्रभुम्।।5।।

अर्थ - जिस आदि निर्गुण तत्व से पराशक्ति प्रगट हुई और उसके बाद ब्रह्मादिकों का आविर्भाव हुआ उसी आदि सगुण ब्रह्मरुप परमतत्व सर्वव्यापक रहने वाले परम् सद्‌गुरु श्री रामलाल जी को मैं अहर्निश प्रणाम करता हूं।

विश्वोत्पत्ति विनाशपालन करा ब्रह्मेश विष्णवादयः।
स्तेषामप्युपरिस्थिता किल पराशक्तिर्नियन्त्रीश्वरी।।
तस्या अप्युपरिस्थितं परगुरोस्तत्वं तु तत्वेश्वरं।।
वन्दे सद्‌गुरु सार्वभौममनिशं श्री रामलाल प्रभुम।।6।।

अर्थ - सृष्टि की उत्पत्ति, पालन व विनाश करने वाले ब्रह्मा, विष्णु, शिव और उनसे ऊपर नियंत्रण करने वाली पराशक्ति से भी परे नित्य सद्‌गुरुतत्व ऐसे सर्वव्यापक रहने वाले परम सद्‌गुरु तत्व श्री रामलाल जी को मैं अहर्निश प्रणाम करता हूं।

आदौदक्षिणविग्रहो हयमुखो हंस स्वरूपोहरिः
षड्वकस्सन कादयोऽथ कपिलोदत्त प्रभुरशंकरः
एतेऽन्येऽपि च नित्य सिद्ध गुरुवो यस्याऽवतारः पुरा।
वन्दे सद्‌गुरु सार्वभौममनिशं श्री रामलाल प्रभुम्।।7।।

अर्थ - आदि विग्रह हयमुख हंस स्वरूप श्री हरिषणानन और सनकादिक ऋषि कपिल देव एवं भगवान शिव ये सब के सब व और भी जो नित्य सिद्ध गुरु हैं वह जिस तत्व के अवतार हैं ऐसे सर्वव्यापक रहने वाले परम सद्‌गुरु तत्व श्री रामलाल जी को मैं अहर्निश प्रणाम करता हूं।

श्री मत्स्येन्द्र जलन्धरौ सुमहितौ गोरक्षनाथोमहान।
रामानन्द कबीर नानक मुखा ज्ञानेश्वरादयाः कलौ।।
सिद्धास्य सद्‌गुरवोऽपि दिव्यकिरण यद्योग सूर्यस्यतं।
वन्दे सद्‌गुरु सार्वभौममनिशं श्री रामलाल प्रभुम्।।8।।

अर्थ - महान सिद्ध श्री मत्स्येन्द्रनाथ जलन्धरनाथ गोरखनाथ एवं उनके अतिरिक्त रामानन्द, कबीर नानक, ज्ञानेश्वर आदि जो इस कलिकाल में सिद्ध पुरुष है वे सब के सब जिस योग सूर्य की किरण रूप हैं ऐसे सर्वव्यापक परम सदगुरुतत्व प्रभु श्री रामलाल जी को मैं अहर्निश प्रणाम करता हूं।

समत्वं योग उच्यते

आचार्य वृन्दावनदासलाल शर्मा

श्रीमद् भगवद्गीता में विश्वात्मा भगवान ने योग की परिभाषा कई अर्थों में अनेक प्रकार से समझाई है! इनमें प्रमुख परिभाषा है **'समत्वं योग उच्यते'**! यह परिभाषा अपने में सम्पूर्ण योग को समेट लेती है। गीता का यह समत्व योग मानव जीवन के शारीरिक, मानसिक एवं अध्यात्म स्तरों को संस्पर्श करता हुआ अपने अव्यय स्वरूप का भी प्रतिपादन करता है। मानव शरीर अध्यात्मप्रासाद की आधारभूमि है अतः योग के चरम लक्ष्य तक पहुँचने के लिये शारीरिक समत्व अपरिहार्य है। आयुर्वेद के सिद्धान्तानुसार **'समदोषाः समाग्निः समधातुः मलाः क्रिया'** का मापदण्ड शारीरिक समत्व के निर्णय को सुनिश्चित करता है। हमारे भौतिक शरीर वात-पित्त एवं कफ धारण करते हैं। आहार-विहार से यह जब दूषित हो जाते हैं तब रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिये योग साधना से इस त्रिदोष को सम रखा जाता है इसे ही समदोषाः कहते हैं। इसी प्रकार से शरीर में तेरह प्रकार की जो अग्नियां है वह भी सम रहनी चाहिये। सप्तधातुयें, मल (वात-पित्त-कफ दूषितावस्था में) तथा समस्त शारीरिक क्रियायें सम रहनी चाहिये। तब शारीरिक स्वास्थ्य मानना चाहिये। किन्तु हमारे ऋषियों की दृष्टि स्थूल स्तर तक ही सीमित नहीं रहती इसलिये उन्होंने केवल शारीरिक स्वास्थ्य की बात नहीं सोची। मानव जीवन के ही स्वास्थ्य की बात सोचकर आयुर्वेदज्ञ ऋषियों ने इन्द्रियों, मन तथा आत्मा के सम एवं प्रसन्न होने पर ही मानव जीवन के स्वास्थ्य को निर्धारित किया है। इस दिशा की पूर्ति के लिये भगवान गीता में सात्विक आहार के साथ-साथ युक्त विहार तथा कर्मों के प्रति युक्त चेष्टा एवं युक्त रीति से उठने बैठने का उपदेश करते हैं। इस प्रकार से साधा हुआ योग ही सिद्ध होता है और दुःखों का नाश करता है। वात-पित्तादि दोषों को सम रखने के लिये योग में आसन एवं प्राणायाम की उपादेयता मानी गई है। स्थूल अन्नमय शरीर के अन्दर दूसरा स्तर प्राणमय कोष का है। प्राण हमारे भौतिक जीवन एवं आध्यात्म जीवन दोनों की ही आधार भित्ति है तथा इन दोनों को जोड़ने में सेतु का काम करता है। प्राणों का समत्व योग साधना के प्रमुख लक्ष्यों में से एक है योगिराज लाहिड़ी महाशय महाराज के सम्पूर्ण योगोपदेश का एकमात्र सार यही है कि प्राण कर्म अथवा प्राणोपासना करो यही सब कुछ है! प्राणों को समता में रखना ही पुण्य है और इनकी विसमावस्था ही पाप है। योगियों की दृष्टि में पाप-पुण्य का अर्थ अत्यन्त सूक्ष्म एवं व्यापक है! जब व्यक्ति के मन में काम, क्रोध, राग-द्वेष, जिघांसा मन्यु की भावना उठती है तो मन के स्पन्दित होने के कारण प्राण का समत्व टूट जाता है। प्राण विषम अवस्था में, भारी एवं द्रुत गति से प्रवाहमान होने लगता है। आयुर्वेद में भी काम-क्रोध भय आदि को जिस प्रकार से गाड़ी अपनी पटरी से उतर जाती है वही दशा तब प्राण की होती है, मानस रोग कहा गया है। इसे ही शास्त्रीय भाषा में आधि कहते हैं। इस आधि से ही फिर व्याधि हो जाती है अर्थात् कोई

भी रोग हो वह प्रथम मन को दूषित करता है पश्चात् प्राणवाही नाड़ियों को तथा इस रक्त को दूषित कर स्थूलता में स्फुटित हो जाता है। महर्षि चरक ने मानसरोगों का उपचार समाधि का अभ्यास (आत्म चिन्तन) एवं सदाचार का पालन माना है। प्राणकर्म के अभ्यास से जब प्राण को सूक्ष्मावस्था में पहुंचाया जाता है तब मन भी एकाग्र होकर संकल्प-विकल्प शून्य होने लगता है। उस समय मन का अमनस्क योग सिद्ध होता है। मन और प्राण का अभेद सम्बन्ध है। किन्तु प्राण मन की अपेक्षा स्थूल है। इसलिये योग साधना की हठयोग परम्परा में प्राण को सम करने पर ही बल दिया जाता है। **'यत्र मनो लीयते तत्र प्राणोऽपि लीयते'** का तात्पर्य यही है कि मन एवं प्राण में से एक के वश में कर लेने पर दूसरा भी वश में हो जाता है। प्राणोप्राण का स्थिर करना ही इसे सूक्ष्म बनाना या सम बनाना है। अजपा साधना भी मूल रूप से प्राण साधना ही है। गीता में वर्णित **"प्राणापानौ समौकृत्वा नासाभ्यन्तर चारिणौ"** का भी उद्देश्य यही है। यहां पर इंडा-पिंगला स्वर को प्राण अपान कहा है। इस प्राण और अपान को ही सम बनाना है। योग साधना में इडा-पिंगला स्वर को समान करते हुये सुषुम्णा स्वर को प्रवाहित करने पर जोर दिया जाता है। समकायशिरोग्रीव होकर किसी एक आसन में बैठते हुये नित्य दो घण्टे प्रतिदिन अभ्यास करने पर सूर्य तथा चन्द्र दोनों स्वर समान रूप से चलने लगते हैं इसी को सुषुम्णा स्वर की गति कहते हैं। इस स्वर के चलने पर मन स्वतः ही शान्त एवं एकाग्र होता चला जाता है। सिद्धयोगी इसी सुषुम्णा नाड़ी में प्राण संचार पर बल देते हैं। यही योगियों की प्राणोपासना एवं प्राण कर्म है। जो तत्वज्ञान का कारण बनता है। योगी अपने प्राण को सहस्रार में पहुँचा देते हैं तब वह सर्वथा वृत्ति शून्य होकर असम्प्रज्ञात समाधिनिष्ठ हो जाता है। वृत्तियाँ अर्थात् मन एवं बुद्धि का प्रभाव आज्ञा चक्र तक ही रहता है। हमारे संस्कार एवं तदात्मिका वृत्तियाँ तभी तक हम पर हावी रहा करती हैं जब तक इनको प्राण का सहयोग एवं सहचारित्व प्राप्त रहता है। यदि प्राण समावस्था में बने रहे तो क्लिष्ट-क्लिष्ट वृत्तियां उठती हुई भी प्रभावहीन होकर शान्त होती चली जाती है। ध्यानाभ्यास काल में प्राण अवश्यम्भावी समावस्था में होता है तभी साधक में दैवी सम्पदा का उद्‌भव एवं विकास होता है। आसुरी वृत्तियाँ क्षीण होकर दबती चली जाती है। सिद्धयोगियों द्वारा प्रशस्त अजपा-विधि भी प्राण साधना है। इसमें अपनी मानसिक चेतना को भी प्राणों के साथ संयुक्त कर द्रष्टा भाव को स्थाई बनाना होता है। जिस योगी के मन और स्वतः ही सम एवं सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त हो गये हैं उस के पास बैठने से ही हमारा मन और प्राण शान्त होने लगते हैं। हमें भी परम शान्ति लाभ हो जाता है। मन और प्राण के सूक्ष्म होने का तात्पर्य यह है कि हमारी चेतना की व्यापकता बढ़ रही है। जो वस्तु जितनी सूक्ष्मावस्था में लाई जाती है वह उतनी ही व्यापक और शक्तिशाली होती है। परमाणु को भौतिक पदार्थों में सर्वाधिक शक्तिशाली माना जाता है। पञ्च तत्वों में आकाश भी सबसे सूक्ष्म एवं व्यापक है। इसी से वायु आदि तत्वों की उत्पत्ति होती है। मन के अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण ही हमारे ऋषियों ने इसे सब शक्तियों का केन्द्र माना है। मन को एकाग्र करने पर वह

सूक्ष्म होता चला जाता है। आत्मा से सूक्ष्म और कुछ नहीं होने से ही आत्मा के लिये **"सः काष्ठा सः परागति'** कहा जाता है। गीता में भगवान ने सम रहने वाले योगी को स्वस्थ कहा है जो गुणातीत होता है। **'समदुःख-सुखः स्वस्थः समलोष्टाश्म कांचन'**। यह वचन योगी के समाधिनिष्ठ होने का मापदण्ड माना जा सकता है। गीता में बारहवें अध्याय में भगवान ने मन के समत्व वाले भक्तों के लक्षण बताये हैं जिनमें ये लक्षण हों वही भगवान को प्रिय है।

योग दर्शन में स्वस्थ एवं सम शब्द की परिभाषा अत्यन्त व्यापक एवं दार्शनिक है 'स्व' इस पद का प्रधान अर्थ आत्मा है जिसकी स्थिति आत्मा में हो उसे ही स्वस्थ माना जा सकता है। इस यौगिक स्वास्थ्य को ही स्वरूपस्थिति कहते हैं। योग दर्शन मे कैवल्य की परिभाषा करते हुये भगवान पतञ्जलि ने **"सत्वपुरुषयोः शुद्धि साम्ये कैवल्यम्'** कहकर प्रकृति और पुरुष की अपने अपने समावस्था में शुद्धि ही कैवल्य कहा गया है। बुद्धि और आत्मा की साम्यावस्था का नाम है अपने अपने स्वरूप में प्रतिष्ठा। ऐसे स्वरूपप्रतिष्ठ योगी के लिये ही कहा जाता है **'सः स्वस्थो भवति निर्मलो भवति"** अर्थात् आत्मदर्शी योगी स्वस्थ हो जाता है, सर्वथा निर्मल हो जाता है। उस योगी की तब 'भूमा' संज्ञा होती है। **"भूमैव सुखम्"** व्यापकता अर्थात् सर्वज्ञता में ही सुख है अल्पज्ञ ही दुःख है। संक्षेप में इस प्रकार से कहा जा सकता है कि जिस प्रकार से शरीर के आधारभूत वातादि त्रिदोष की साम्यावस्था को आयुर्वेद स्वास्थ्य का आधार मानता है उसी प्रकार से मन प्राण की समावस्था मानसिक स्वास्थ्य है तथा बुद्धि एवं आत्म की शुद्धि एवं साम्यावस्था आत्मा का स्वस्थ होना है। यदि समत्व का दूसरा नाम 'स्वस्थ' कहा जाये तो समीचीन ही होगा। योगी समाधि के द्वारा समावस्था को प्राप्त करता है। विषम अवस्था ही संसार है, दुःख है। प्रकृति की साम्यावस्था ही लयावस्था कहलाती है जो योगियों की समाधि है यही अनामय पद कहलाता है समावस्था ही ब्रह्म है। गीता में भगवान ने **'निर्दोष ही समंब्रह्म'** कहकर ब्रह्म को निर्दोष एवं सम कहा है। योग साधना की भागदौड़ इसी समत्व में जाकर समाप्त होती है। अतः गुरुदेव की कृपा पाकर उस समत्व की प्राप्ति के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहना चाहिये।

□□□

शुद्ध चैतन्य आत्मा

भगवद्गीता में भगवान ने केवल जनक जी का ही नाम लिया है, वे जीवन-मुक्त हैं। ज्ञानी सतत् यह अनुसंधान करते हैं कि मैं न पुरुष हूं, न स्त्री हूं। किन्तु शुद्ध चैतन्य आत्मा हूं।

अजपा गायत्री की उपासना पद्धति

आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा (दिल्ली)

विश्वव्यापी महाशक्ति के कुछ शक्तिकण प्राणशक्ति के रूप में प्रत्येक जीव को प्राप्त हुए हैं। उनको केवल खर्च ही करते रहने पर वह शक्ति प्रतिदिन 21 हजार 600 के हिसाब से श्वास-प्रश्वास के रूप में खर्च होती चली जायगी। एक दिन जैसे ही सारी प्राणशक्ति चुक जायगी वैसे ही मृत्यु अपना काम कर देगी। यदि बेट्री चार्ज भी होती रहे तो वह जल्दी डाउन नहीं होगी। श्री सद्गुरु देव अपनी करुणा कृपा से अजपा-जाप द्वारा श्वास-प्रश्वास की क्रिया संचालित कर प्राणों के कोष को निरन्तर जागृत करवा दिया करते हैं। जिससे विधिपूर्वक मन्त्र जपने से श्वास-प्रश्वास का निरोध होकर सुषुम्ण के अन्दर क्रियायोग की साधना प्रारम्भ हो जाती है। क्रियायोग से समाधि (सर्व-विकल्पों का अभाव) होती है और जीव जन्म-मृत्यु जरा, व्याधि रूप बन्धन से मुक्त हो जाता है। यह क्रियायोग की साधना सम्प्रदाय भेद से भिन्न-भिन्न प्रकार की है। महर्षि पतञ्जलि ने तपः, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान को क्रियायोग कहा है। अन्यत्र सुषम्ना मार्ग में ॐकार की ध्वनि की साधना तथा शाम्भवी मुद्रा द्वारा उन्मनी साधना क्रियायोग कहा जाता है, सिद्धमार्ग में अजपा गायत्री ही प्राणों का लय कराने वाली उच्चकोटि की साधना है। इसे हंसयोग या प्राणयोग या आत्मयोग आदि विभिन्न नामों से सन्त-साहित्य में कहा गया है। वस्तुतः प्राण ही हंसात्मा है और आत्मरूप में शरीर में स्थित है। वहाँ बिना जप किये ही मन्त्र जप होता है। यह भवबन्धन का समूलोच्छेद करने वाली अमृत साधना है। हमारा प्राण 'ह' कार शब्द करता हुआ अन्दर श्वास रूप से प्रवेश करता है। इस प्रकार हंसःहंस इस स्वतः उद्भूत मन्त्र को जीव सदा जपा करता है। दिन-रात में इक्कीस हजार छः सौ बार जप हो जाता है। इस अपजा गायत्री का महात्म्य तन्त्र शास्त्रों में सबसे अधिक बतलाया गया है। योग शिखोपनिषद् में स्पष्ट उल्लेख है-**'अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्षदायिनी'**। श्री सद्गुरुदेव के शक्तिपात से प्राण की बहिवृत्ति पलटकर आन्तरिक हो जाती है जिससे सुषुम्णा में यह हंस रूप से प्राणशक्ति का आवागमन उलटकर सोऽहं सोऽहं रूप में स्वतः होने लगता है। सकार और हकार शिव और शक्ति का अर्द्धनारीश्वर रूप है। इसको जपते-जपते **'सो'** का 'ओ' और हं का **'म्'** शेष रह जाता है जिससे शुद्ध ब्रह्मस्वरूप ॐ में योगी स्थित होकर अव्यय पद प्राप्त करता है।

अजपा जाप से श्वास-प्रश्वास की स्वाभाविक गति बहुत कम हो जाती है। इसके जापक को आन्तरिक और बाह्य कुम्भक लगने लगता है। इसे सिद्ध प्राणायाम भी कहते हैं। कुम्भक के समान बल को बढ़ाने वाली कोई दूसरी और क्रिया नहीं है। योगाचार्यों ने आयु को बढ़ाने के रहस्य की खोज श्वास-प्रश्वास के विज्ञान में की है। हमारे जीवन की प्राणशक्ति श्वास-प्रश्वास से खर्च होती रहती है। वह जितनी जल्दी खर्च होगी उतनी ही जल्दी यमराज का अतिथि बनना पड़ेगा। यदि प्राणकर्म की साधना द्वारा उनको सीमित मात्रा में खर्च किया जायगा तो आयु लम्बी होगी। काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, चिन्ता, राग और द्वेष आदि विकारों की अवस्था में श्वास जल्दी-जल्दी चलने लगता है। सन्तोष, करुणा, धैर्य, प्रसन्नता की अवस्था में श्वास

की गति सरल और शान्तभाव में कुछ कम मात्रा में व्यय होती है। सामान्य दशा में श्वास-प्रश्वास बारह अंगुल तक बाहर निकलता है। गाते समय सोलह अंगुल, भोजन के समय बीस अंगुल, मार्ग चलते समय चौबीस अंगुल और निद्रा में तीस, मैथुन में छत्तीस तथा दण्ड बैठक में इससे भी अधिक बाहर श्वास निकलता है। ध्यान और समाधि में यह गति अत्यन्त सूक्ष्म और दो अंगुल, चार अंगुल तथा शून्य स्थिति तक पहुँच जाती है। जिससे परिणामस्वरूप आयु बढ़ती है। रोग की स्थिति में जप करने का भी यही विज्ञान है कि प्राण कोषों का व्यय कम और बचत अधिक तथा ध्यान की स्थिति में व्यष्टि प्राण समष्टि प्राण से जुड़कर क्षय हुई शक्ति की भरपायी कर लेते हैं। समाधि में व्यष्टि और समष्टि प्राणों का अन्तर तिरोहित हो जाता है जिससे प्राण कोष पूर्णरूपेण सुरक्षित बना रहता है।

नीचे मूलाधार से लेकर ऊपर ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त बार-बार अपने मन और प्राणों को श्री सद्गुरु प्रदत्त योग विधि से चलाते हुए उनके साथ इष्ट मन्त्र का किया हुआ जप सिद्धिदायक और सफल होता है। इसके बिना केवल वाणी की क्रिया से जपा मन्त्र पशुभाव का मन्त्र कहलाता है जिसका प्रभाव दैवयोग से यदा-कदा हो जाय तो हो जाय अन्यथा ऐसा मन्त्र चैतन्य नहीं हो पाता। जो साधक मन्त्र जप के लिए चार अनिवार्य कर्मों का अवलम्बन लेते हैं,उन्हें अवश्य सफलता मिलती है। यह कर्म है- श्री गुरुदेव का पूजन, उनका ध्यान (कुण्डलिनी शक्ति के रूप में प्राणों के अन्दर परावाणी से उठाकर वैखरी तक फिर व्युत्क्रम से वैखरी से मध्यमा, पश्यन्ती और परा वाणी तक मन्त्र को उठाता और लय करता है तो यह जप के साथ-साथ प्राणों का यज्ञ भी सम्पन्न होता है। अतः पूजा, ध्यान, जप और होम-इन चार कर्मों को नित्य करते हुए मन्त्र जप करने वाला साधक अवश्य सफल होता है। रुद्रयामल तन्त्र में श्री महेश्वर का उपदेश है कि जब तक कुण्डलिनी शक्ति का जागरण नहीं होगा तब तक साधक का मन्त्र चैतन्य नहीं होगा। जब तक चैतन्य मन्त्र नहीं होगा तब तक मन्त्र जप से सिद्धि नहीं मिलेगी। अतः साधक को इष्ट ध्यानपूर्वक मन्त्र जप करना चाहिये। योग ध्यान बिना अकेले मन्त्र से सिद्धि नहीं मिल पाती। कहा भी गया है-

न योगेन विना मन्त्रो
न मन्त्रेण विना हि सः।
द्वयोरभ्यास योगेन ब्रह्म
सं सिद्धि कारकम्।।

(रुद्रयामल तन्त्र)

जिस प्रकार शिव और शक्ति के संयोग से सृष्टि होती है उसी प्रकार मन्त्र को कुण्डलिनी शक्ति से संयुक्त कर पुरुष ब्रह्म बीज और माया तथा शक्ति बीज से संपुटित कर मन्त्र जप करने से मन्त्र शीघ्र चैतन्य होकर फलदायी होता है।

सिद्धयोग के विद्यार्थियों को अनाहत शब्द ध्वनि (अजपाजप) के मार्ग से परम पद तक पहुँचने के लिए साधना करनी चाहिये। प्राण क्रिया के रूप में जो बिना प्रयत्न के सहज रूप से हंस शब्द की ध्वनि हो रही है उसके साथ मन का मेल करने से उसके ध्वनि के अन्दर की ज्योति का अनुभव होता है। ज्योति के अन्दर मन डूबकर परम विष्णु पद में निमग्न हो जाता है। योगशिखोपनिषद में इस सिद्धान्त को स्पष्ट किया है-

अनाहतस्य शब्दस्य तस्य
शब्दस्य यो ध्वनिः।
ध्वनेरन्तर्गतं ज्योति-
र्ज्योतिरन्तर्गतं मनः।।

तन्मनो विलयं याति
तद्विष्णोः परमं पदम्।।

इस अनाहत ध्वनि या अजपाजप की साधना कराने वाले श्री सद्‌गुरुदेव से बढ़कर संसार की कोई वस्तु नहीं है। अतः इस प्रकार की साधना को प्राप्तकर साधक सदा श्री सद्‌गुरु की भक्ति करता रहे। गुरुभक्त को संसार में कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है। लेकिन गुरुभक्ति करना सबसे मुश्किल है। सही अर्थों में मुश्किल से ही कहीं कोई-कोई गुरुभक्त मिलता है। उसके दर्शन मात्र से परानन्द और परम प्रेम का सात्विक भाव उमड़ने लगता है जिससे कुण्डलिनी महाशक्ति शिवसायुज्य के लिये मचलने लग जाती है और भस्त्रिका प्राणायाम स्वतः चल पड़ता है। इसलिए इस विद्या को देने की शास्त्र ने विशेष व्यवस्था दी है। जैसे पिता अपनी बहुमूल्य सम्पत्ति मूर्ख पुत्र को न देकर समझदार उस बेटे को दिया करता है जो उसको हर प्रकार से संभाल कर रख सके। उसी प्रकार यह विद्या अत्यन्त गोपनीय है तथा कठोर तप एवं श्री सद्‌गुरु सेवापरायणको ही दी जा सकती है। जैसे वृक्ष की छाया को प्राप्त करने से तृप्ति नहीं होती, वृक्ष के साक्षात् फलों से ही तृप्ति हो पाती है। उसी प्रकार श्री सद्‌गुरुदेव जब तक स्वय अपनी शक्ति में स्थित होकर परावाणी के स्थान से शिष्य में पराशक्ति का जागरण नहीं करते तब तक पराचेतना का संचार नहीं होता। केवल गुरु बनने के चक्कर में कोई मन्त्र देने लगे तो उससे न साधक का कल्याण है न मन्त्रदाता का। बल्कि मन्त्रदाता स्वयं के लिए नरक का रास्ता तैयार कर लेता है। ब्रह्म विद्या के अधिकारी प्रसंग में शास्त्र की आज्ञा है-

नापुत्राय प्रदातव्यं नाशिष्याय कदाचन्।
गुरुदेवाय भक्ताय नित्यं भक्तिपराय च।
प्रदातव्यमिदं शास्त्रं नंतरेभ्यः प्रदापयेत्।
दातास्य नरकं याति सिध्यते न कदाचन।।

जो अपने माता पिता की सेवा नहीं करता तथा जो शिष्य के कर्त्तव्य का यथार्थ रूप से पालन नहीं करता, वह इस गहन गम्भीर गोपनीय परम निधि का अधिकारी नहीं हो सकता। जो अपने पूज्यजनों माता-पिता, अतिथि, ब्राह्मणों तथा देवताओं की निष्कपट भाव से सेवा-सुश्रुषा एवं अर्चना पूजा करता है और श्री सद्‌गुरुदेव को अपनी सेवा से प्रसन्न कर उनके हृदय में बस गया वही इस सम्पत्ति का अधिकारी है। इससे अतिरिक्त धनी, मानी, ज्ञानी, ध्यानी, या उच्चकुल का अभिमान रखने वाला तो किसी तरह इस विद्या का अधिकारी है ही नहीं। श्री सद्‌गुरुदेव के पास रहना सेवा करना नहीं है। कमल के पास मेंढ़क, मछली और दूसरे कीड़े-मकोड़े सदा रहते हैं। किन्तु कमल के पराग का पान मधुरस पिपासु भ्रमर ही कर पाता है। चाहे वह क्षण भर को कमल का संग करे। गायों के थनों के पास कीड़े चिपके रहते हैं जो केवल गाय का खून ही पीते हैं। उसका दूध पीने का अधिकारी तो वह बछड़ा होता है जो अपनी माँ को देखकर रोम-रोम पुलकित कर लेता है और उसके बिना अम्मा-अम्मा की रट लगाने लगता है। श्री सद्‌गुरु में देव जैसी बुद्धि जब तक नहीं होगी गुरु-सेवा भी ढोंग मात्र या स्वार्थ सिद्धि का एक उपाय होगा अजपा की महिमा सिद्धों से लेकर सन्तों तक सभी ने मुक्तकण्ठ से गाई है। ध्यानबिन्दूपनिषद् में तो यहाँ तक उल्लेख है कि इस विद्या के संकल्पमात्र से प्राणी पापों से मुक्त हो जाता है। ऐसा कहा गया है कि-

अनया सदृशो विद्या
अनया सदृशो जपः।
अनया सदृशं पुण्यम्
न भूतं न भविष्यति।।

अर्थात् इसके समान विद्या और इसके जप के समान जप तथा इससे होने वाले पुण्य के सदृश कोई और पुण्य न अब तक हुआ है और न आगे होने वाला है। अजपा में प्राण और अपान को जोड़ने वाली जीव रूपी ग्रन्थि की क्रिया है। वह हंस रूप निरंजन है। जब वह हंस रूप आत्मचेतना गतिशील होती है तो वही सोऽहं हो जाती है। यह प्राणों की रक्षा करने वाली अजपा गायत्री कुण्डलिनी से प्रकट हुई प्राण विद्या है। जो इसको प्राप्त कर लेता है वह वेदों के रहस्य को जान लेता है। इसीलिये इसे शास्त्रकारों ने महाविद्या कहा है। इसका एक करोड़ जप होने पर दस प्रकार के नादों का अनुभव होने लगता है। यही साधकों के हितार्थ अजपा गायत्री जप का कर्मकाण्ड विधानानुसार एक प्रयोग है। नैष्ठिक साधक इसका प्रयोग कर योगनिष्ठ बन सकते हैं।

ॐ श्री गणेशायनमः। अथ अजपा गायत्री।

अथ संकल्पः। ....गुण विशेष विशिष्टायां शुभ तिथौ अमुक नक्षत्रे अमुक क्षेत्र अमुक नाम श्री परमहंस प्रीत्यर्थे सम्यक् ज्ञानाऽपरोक्षेण सिद्ध्यर्थे अजपा गायत्री जपमहं करिष्ये।

ॐ अस्य श्री अजपा गायत्री मन्त्रस्य हंसः ऋषिः। अव्यक्त गायत्री छन्दः। श्री परम हंसो देवता। हं बीजम्। सः शक्तिः।

सोऽहं कीलकम्। श्वेतवर्णम् उदात्तस्वरः। परमात्मा क्षेत्रज्ञः परम जपस्तेजस्तत्व श्री परमहंस प्रीत्यर्थे अग्निरादय प्रभृति सर्योदय पर्यन्तम् अहोरात्राणि श्वासोच्छ्वासरूपेण एक विंशति सहस्त्राणिषट्शताधिकानि अजपा गायत्री जपमहं निर्वेदयामि अथकरन्यासः।

ॐ हं सां सूर्यात्मने अंगुष्ठाभ्यां नमः। ॐ हं सीं सोमात्मने तर्जनीभ्यानमः। ॐ हं सुं निरंजनात्मने मध्यमाभ्यां नमः। ॐ हं सैं निराभासात्मने अनामिकाभ्यां नमः। ॐ हं सौं अतनुसूक्ष्मात्मने कनिष्टिकाभ्यां नमः। ॐ हंसः प्रचोदयात् करतलककपृष्ठे। सूर्याय सोमाय निरंजनाय निराभासाय अतनुसूक्ष्माय प्रचोदयातिति। अग्नीसोमाभ्यां वौषट्। एवमेव हृदयांगन्यासः कूर्यात। हंससाक्षात्कारार्थे विनियोगः।

अथध्यानम्-हृदये हंसमात्मानं ध्यायेत्-मंत्र;

अष्टपत्रसिताम्बोजे कर्णिका मध्यमे हृदि।

हंसं ध्यायेम्महाहंसं सूर्यकोटिसमप्रभम्। हृदयाष्टदले पद्महंसात्मानं ध्यायेत्। गमागमाभ्यं गमनादि शून्यं चिद्रूपमेकं परमाद्वितीयम्। ध्यायन्ति ये सर्वजनान्तरस्थं नमामि हंसं परमात्मरूपम्।। अग्निसोमौ उभय पक्षौ ॐ कारःशिरो बिन्दुः नेत्रे मुखे रुद्रौ, रुद्राणी चरणौ, बाहोः कालश्चाग्नि पश्यात्मना गारश्वशिष्टोभयपार्श्वे भवतः। श्री परमहंस भानुकोटि प्रतीकांश येनेदं व्याप्यं तस्याष्टदलेवृतिर्भवति सोऽहं हंसः इति चिन्तयेत्। द्वितीयं ध्यानम्-

अरुणकमलसंस्थं पद्मसंस्था च गौरी।

हर नियमित चिह्नं सौम्यता नून मंत्रम्।।

बहुल बहुभिर्दृष्टा प्राप्यते पाश टं कं

अभयवरद चित्रम् रूप मूर्धाविकेशं,

हृदय कमल मध्ये सूर्यविम्बासनस्थम्।

सकलभुवन बीजम् सृष्टि संहार हेतुम्।

निरतिशय सुखात्मज्योतिषं हंसरूपं, चितति भुवनभावं चिन्तयेदात्म भावम्।

अनेन द्वादशवारं प्राणयामम्। अथ मन विश्रमोपनिषत्। तस्याष्टदले वृतिर्भवति। पूर्वदलेश्वेतवर्णे यदा विश्राम्यते मनः तदा धैर्यम् उदारंच धर्म कीर्तिमतिर्भवति। अग्निदले रक्तवर्णे यदा विश्राम्यते मनः तदानिद्रालस्य मन्द बुद्धिर्मतिर्भवेत्। दक्षिणदले कृष्णवर्णे यदा विश्राम्यते मनः तदा ज्वाला प्रज्वलित।- जाज्वल्यमानं च

मतिर्भवति। पश्चिमेदले यदा पद्मे विश्राम्यते मनः तदा क्रीडा च हास्यं च उत्साहं च मतिर्भवेत्। वायव्यदले श्यामवर्णे यदा विश्राम्यते मनः तदा चिन्ता च उच्चाटनं वैराग्यं च मतिर्भवेत्। उत्तरेदले पीतवर्णे यदा विश्राम्यते मनः तदा भोग च श्रृंगारं हास्योल्लास मतिर्भवेत्। ईशानदले गौरवर्ण यदा विश्राम्यते मनः तदा कृपा दया ज्ञानं धर्म कीर्तिमतिर्भवेत्। संधिसंधिषु मिश्रितवर्णे यदा विश्राम्यते मनः तदा देह गेह जाड्यं विद्वेषं च मतिर्भवेत्। मध्यदले स्फटिक वर्णे यदा विश्राम्यते वर्ण तदा सर्वगुण ज्ञानं चैतन्यं च मतिर्भवेत्। केशरे जाग्रत। कर्णिकायां स्वप्न। लिङ्गे सुषुप्तिः। पद्मत्यागेतुरीयम्। हृदयाष्ट दले हंसात्मानं ध्यायेत्। एवं साऽहं इति तस्मात् हंसोविचारणीयम्।

यस्य स्मरण मात्रेण
सर्व पापैः प्रमुच्यते।
यः पठेत्सदा भक्त्या
स या ति परमां गतिम्।।

ॐ ब्रह्माहमस्मि। हंसो मुखमुपविश्य आराधयामि। मणिसन्निभमात्मलिङ्गम् मायापुरी हृदयपंकज सन्निविष्टम्। श्रद्धानदी विमलजलाभिषेकं नित्यं समाधिकुसुमैः न पुनर्भवामि।

आधारे लिंग नाभौ प्रकटित हृदये तालुमूले ललाटे। द्वे पत्रे शऽधारे द्विदशदले द्वादशार्द्धे चतुष्के। वासन्तिबाल मध्ये ड फ क ठ सहिते कण्ठ देशे स्वराणां ह सं तत्वार्थयुक्तं सकलदल गतं वर्णरूपंनमामि।मूलाधार चक्रे गुदास्थाने चतुर्दल कमले चतुरक्षरयुक्ते वादिसान्ते वं शं ष सं इत्यन्तर्मातृका।

अथबहिर्मातृका- आनन्दा योगानन्दा विरानन्दा परांनन्दा इति बहर्मातृका। सहितं अलकृत पद्मस्थिताय रक्तवर्ण गं बीजम् गणक ऋषिः गणेश्वरो देवता। सिद्धिः बुद्धिः शक्तिः। मूषक वाहनम् परशु कमलायुध सालङ्कार भूषित सपरिवाराय सांगोपांगाय श्री गणाधिपतये नमः। षट्शतं अजपा गायत्री गणेश्वर रूपिणे परमात्मनेऽहं निवेदयामि।

स्वाधिष्ठान चक्रे षट् दल पद्मे षट्क्षरयुक्ते वादिलान्ते-ब भ मं यं रं लं इत्यन्तर्मातृकाः। अथबहिर्मातृकाः-कामाक्षी तेजसी वेष्टिता मैथुनी उल्लासिनी बल्लभाः इति सहितं अलंकृत पद्मस्थितायः पीतवर्णं क्लींबीजम्। अग्निः ऋषिः। ब्रह्मणे नमः। षट् सहस्त्रम्। अत्रि ब्रह्मस्वरूपिणे परमात्मनेऽहं निवेदयामि।

मणिपूरके चक्रे नाभिस्थाने दशदल कमले दशाक्षर युक्ते डादिफान्ते ड ढं णं तं थं दं धं नं पं फं इत्यन्तर्मातृकाः।

अथबहिर्मातृकाः। लक्ष्मी लक्षणा अमृता ज्ञानिना पीयूषा अति पीयूषा शान्तिदा जया विजया। इति बहिर्मातृकाः। सहितं अलंकृतं पद्मस्थिताय नीलवर्णम् श्रीं बीजम् पवन ऋषिः विष्णुर्देवता।

श्री महालक्ष्मी शक्तिः गरूण वाहनाय शंख चक्र गदा युध सालङ्कार- सुभुषिताय सपरिवाराय सांगोपांगाय विष्णव नमः। षट् सहस्त्रं अजपा नाम गायत्री विष्णु रूपिणे परमात्मनेऽहं निवेदायमि नमः।

अनाहत चक्रे-हृदयस्थाने द्वादश दल पत्रे द्वादशाक्षर युक्ते कादिठान्ते कं खं गं घं ङं। चं छं जं झं ञं। ट ठं। इत्यन्तमातृकाः।

अथबहिर्मातृकाः- उमा गौरी तनया रुद्राणी तेजसा। षट्वादिनी भातरः शान्तिदा पार्वती रुद्रकुमारी हुंकारी रुद्रापशाची इति बहिर्मातृकाः। सहित अलंकृत पद्मस्थिताय श्वेतवर्ण यं बीजं सुर्यऋषिः रुद्री देवता उमा शक्तिः वृषभ वाहनम् त्रिशूल डमरू आयुध सालङ्कार विभुषित सपरिवाराय सांगोपांगाय ईश्वराय नमः। षट् सहस्त्र अजपा गायत्री ईश्वररूपिणं परमात्मनऽहं निवेदयामि।

विशुद्ध चक्रे कण्ठस्थाने षोडषदल कमले षोडशाक्षर युक्ते अकारादि विसर्गान्ते अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं एं ऐं ओं औं अं अः। इत्यन्तर्मातृका।

अथबहिर्मातृकाः- अविद्या अक्रिया असनद्विद्या क्रिया कर्मवादिनी विवादवादिनी प्रिया मालिनी तनया मैथुनी। वल्लभा कलशा प्रतिमा अज्ञान प्रसादा। इति बहिर्मातृकाः स्थिताय धूम्रवर्ण हं बीजम् इन्द्र ऋषिः आत्मा देवता पृथ्वी शक्तिः वायुवाहन जीवात्मने नमः। एक सहस्त्रं अजपा गायत्री जीवात्मरूपिणे परमात्मनेऽहं निवेदयामि। अग्निश्चक्रे भ्रूमध्यस्थाने द्विदलपद्मे द्वऽक्षरे युक्ते हादिक्षान्ते हं क्षं इत्यन्तर्मातृकाः। अथबहिर्मातृकाः। हं बीजं कंस ऋषिः परमहंसो देवता सुषुम्णा शक्तिः आकाश वाहनम् हंसात्मने नमः। एक सहस्त्रं अजपा गायत्री ब्रह्मस्वरूपिणे परमात्मनेऽहं निमेदयामि।

अजरामर चक्रे-ब्रह्मरन्ध्र स्थाने सहस्त्र दल पद्मे सहस्त्रारयुक्ते अन्तर्मातृकाः। अथ बहिर्मातृका:- वं शं षं सं। बं भं मं यं रं लं। डं ढं णं तं थं नं पं फं। कं खं गं घं ङं। चं छं जं झं ञं। टं ठं। अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः। हं क्षं इत्यन्तर्मातृकाः। अथ बहिर्मातृका:- आनन्दा योगानन्दा विरानन्दा परानन्दा कामाक्षी तेजसी वेष्टिता मैथुनी उल्लासी वल्लभा लक्ष्मी लक्षणा अमृता ज्ञानिना पौष्टा पीयूषाः अतिपीयूषाः शान्तिदा जया विजया उमा गौरी तनया रुद्राणी तेजसी षट्वादिनी पार्वती रुद्रकुमारी रुद्रपिशाची अविद्या अविक्रिया सद्विद्या क्रिया कर्मवादिनी विवादवादिनी प्रिया मालिनी तनया मैथुनी वल्लभा कलशा प्रतिमा अज्ञाना प्रसादा चैतन्या प्रमदा सर्वार्थसाधिनी ईश्वरधारिणी रक्षायै इति सहितं नाना वर्णं ओं बीजम् निरञ्जन निराकार निर्गुण ऋषिः परमगुरु देवता पराशक्तिः परम गुरुवे नमः। एक सहस्त्र अजपा गायत्री श्री गुरु परमस्वरूपिणे परमात्मने नमः अहं निवेदयामि इति अव्यक्त ज्ञानां षट् शताधिकं एकविंशति सहस्त्रं संख्याकृते तत्रतत्र देवेभ्यः। अहं मोक्षार्थं समर्पयामि। श्वासोच्छ्वास रूपेण अहोरात्र विधीयते हकारः पूरकश्चैव सकारो रेचकस्तथा। हकार शिव रूपेण सकारः शक्तिरुच्यते। सोऽहं हंसेति बीजेन जीवजपति सर्वदा एकविंशति सहस्त्राणि शतानि षट्शताधिकं हंसः सोऽहं स्थितं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा। तेन संकल्पमात्रेण मोक्षो भवतिनान्यथा।

अनेन सदृशी विद्या अनेन सदृशो जपः।
अनेन सदृशो मन्त्रो न भूतो न भविष्यति।।
अजपा कर्म सिद्ध्यर्थे अजपा मोक्षदायकम्।
अजपा जपतो नित्यं पुनर्जन्म न विद्यते।।
कुल कोटि समं स्थानं वसते ब्रह्मणः पुरी।
सुखं दःखं समर्प्यैव पुण्यपापैः प्रमुच्यते।।
मन्त्रोलय हठश्चैव राजयोगस्तथैव च।
निगमं पंचेते समाधिः पंचधा भवेत्।।

गमागमस्थं गमनादि शून्यं
चिद्रूपदीपं तिमिरान्ध नाशम्।
पश्यामि तं सर्व जनान्तरस्थं
नमामि हं सं परमात्मरूपम्।।
ब्रह्मैवाहं न संसारी
मुक्तोऽहमिति च भावयेत्।
अशक्तवान्भावयितुम्
वाक्यमेतत् समभ्यसेत्।।

षट्शतं तु गणेशस्य षट्सहस्त्रं तुवेध से।
षट् सहस्त्रं गदापाणेः षट् सहस्त्रं पिनाकिने।।
आत्मन्येव सहस्त्रं तु गुरुवेऽपि सहस्त्रकम्।
जप संख्या विधानेन् सहस्त्रं परमात्मने

दैवत	गणेश	ब्रह्मा	विष्णु	रुद्र	आत्मा	परमात्मा	सद्गुरु	
स्थान	गुदा	लिंग	नाभि	हृदय	कण्ठ	भृकुटि	शिखा	जप
संख्या	600	6000	6000	6000	1000	1000	1000	21600 संख्या
घटिका	1	16	16	16	2	2	2	पल 46 / 46

36 / 36 अक्षर – 40 / 40 / 6 / 6 / 6 सहस्रदल शिखा स्थाने

अधारस्तु चतुर्दलोऽरुणरुचिः वासान्तवर्णात्मकम्।
स्वाधिष्ठानमनेक विद्युत्निभं बालान्त षटपत्रकं पीताभं।।

मणिपूरकं दशदलैः डाद्यैः फकारान्तं पत्रैः द्वादशभिः स्वरैः विलसित ज्योतिर्विशुद्धाम्बुजे हं क्षं अक्षर पद्मपत्र युगलं पत्रं सहस्राक्षरं नित्यानन्दमयं सदाशिवपदं तत्वं पदं शाश्वतम शुभंभवतुः।

इसका जप करने से पूर्व चारों दिशाओं में विघ्नविनायक श्रीगणेश की स्थापना कर निम्न मन्त्र से उनका पूजन करें–

ॐ नमः एकदन्ताय हस्तपुस्तकाय लम्बोदराय।
देवदत्त[1] उच्छिष्टं सदोदधे धे धे धे स्वाहा।

---

1. स्वनाम।

सिद्धयोग का मार्ग

सिद्धयोग का मार्ग बड़ा विलक्षण है। उसमें आह भरने की फरसत नहीं न शिकवा करने की गुञ्जाइश। यह मार्ग विहङ्गम मार्ग है। इसमें उड़ने को निर्बाध आकाश मिल जाता है। उड़ने के लिए पंख मजबूत होने चाहिए फिर कुछ भी मुश्किल नहीं। श्री गुरुदेव का ध्यान करने से रोग ठीक हो जाते हैं। पर श्री सद्गुरुदेव की सही धारणा प्रत्येक व्यक्ति के वश की बात नहीं। इसके लिये हनुमान जी जैसा हृदय चाहिए। जो हृदय फाड़कर श्रीराम को दिखा सके। यदि श्री गुरुदेव में हनुमान जैसी अनन्य निष्ठा हो तो 'ध्यानमूल गुरोर्मूर्तिः' यह सिद्धान्त सबसे सरल है। स्थूल, सूक्ष्म, कारण तथा तुरीय सभी शरीरों का ध्यान करना आना चाहिए।

—आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा

किमस्ति योगः

श्री द्वारका प्रसाद शर्मा

306-ए, (अभिषेक) प्रिया निकुंज, एल्डिको-उदयन -दो,
उतरेटिया, रायबरेली,रोड, लखनऊ

भुञ्जन स्वकीयमात्मानं, परस्मिन्परमात्मनि।
तयोरैक्यं भवेद्यावत्, तद्योगः परिकल्पितः।। 1।।

पतञ्जलिना मुनिना, योगदर्शन सूत्रकैः।
एकैके सूत्रके क्रमशः, योगमाला हि स्थापिता।। 2।।

गीतासारं समुद्धृत्य, यत्र तत्रोपवर्णितम्।
संक्षेपतः सूत्रसारं, कलशः सागरायितः।। 3।।

श्रीमदभगवद्गीता वै, तथा च योगदर्शनम्।
साम्यमादधते द्वौ तु, विषये योगसंज्ञ के।। 4।।

योगस्य विषये भ्रान्तिः वर्तते जनमानसे।
आसनान्ये व योगो वै, नैवान्यत्तत्र विद्यते।। 5।।

दूरदर्शन यन्त्रेषु, बहुधा दृश्यते पटे।
नवीना विषयस्तत्र, आविष्कृता विदेशिभि :।। 6।।

नार्यस्तास्ता निजाङ्गानि, संदर्श्यासन माध्यमैः।
लुठन्ति मानसानि नो, असानानि न तानि वै।। 7।।

अद्य यावत् प्रचाराय, प्रसाराय च स्वार्थकम्।
सर्वेऽपि योगिनः सन्ति, केचित् परमयोगिनः।। 8।।

अष्टाङ्गैः समुपेते तु, नो रुचिः कस्यचित्तु वै।
शीघ्रमिच्छन्ति यावद् हि, विना करणेन तत्फलम्।। 9।।

न यमस्त न नियमस्य, प्राणायामस्य नो च वै।
क्वापि तत्रास्ति चिन्ता नो, "योगा" योगस्य बालकः।। 10।।

यथा रामोऽस्ति "रामा" हिं, कृष्णः "कृष्णा" हि ध्वन्यते।
विदेशिभिर्देशजैश्च, फलं किं स्यान्न वेद्म्यहम्।। 11।।

शब्दब्रह्म निराहस्य इप्सितं कथमाप्नुयात्।
अर्थो हि प्रमुखस्तत्र अन्यथाऽनर्थमेव हि।। 12।।

अर्थभवनमेव स्यात् "जपस्तदर्थभावनम्"।
सूत्रं महर्षिणा प्रोक्तं, मिथ्यात्वं स्वयमावहेत्।। 13।।

साध्यं स्याद्दीर्घकालेन, नैरन्तर्यमपेक्षते।
श्रद्धायुक्त मनश्चापि, दृढाभूर्भविता तदा।। 14।।

एवमेतत्प्रकारेण, योगेप्सुः योगमाचरेत्।
अभीष्टता फलस्यापि, तदा भवितुमर्हति।। 15।।

अस्माभिर्गुरुदेवैस्तु, वारम्वारं प्रबोधितम्।
मंत्रजाप च ध्यानन्त, नैरन्तर्येण चाचर।। 16।।

गुरुर्ति मन्त्ररुपो वै, ध्यायस्व नितरांतुतत्।
श्रद्धया परया युक्तो, वांछितं फलमाप्तये।। 17।।

योगारुढस्तु यः कोऽपि, योगस्तच्छिक्षकः स्वयम्।
अस्मिन्नाचरणं श्रेयः, विना करणेन निष्फलम्।। 18।।

गुरोराज्ञा शिरोधार्या, शिष्यत्वं तत्र सार्थकम्।
मनुते यो गुरोर्वाचं, सर्वार्थसिद्धि कारणम्।। 19।।

मुनिनाम यद्दै, व्याख्यातं योगदर्शनं।
सर्वं त्रिकाल सत्यं तत्, मानवानाञ्च भूतये।। 20।।

गुरु देवोऽपि गीतायं, तथा योगस्य पद्धतौ।
शिक्षन्ते स्म सर्वेवं हि, अतस्तद्वत् समाचर।। 21।।

नोट- उपरिलिखित श्लोकों की रचना अनुष्टुप श्लोकों (छन्द) में की गई है। इन श्लोकों के रचयिता द्वारा समस्त योगदर्शन में समाविष्ट सूत्रों को ऐसे ही श्लोकों के माध्यम से योग विषय वस्तु की विशद व्याख्या का प्रस्तुतीकरण ही अभीष्ट मन्तव्य है। उपरिलिखित श्लोकों में अभी तक योग का वास्तविक अर्थ क्या है, योग शब्द को "योगा" कहकर उसका निरादर करना तथा कराते हुए योग की इतिश्री मान बैठना ही आधुनिक युग की परिकल्पना बनती जा रही है। श्री मद्भगवद्गीता में भगवन्मुखारविन्द से निःसृत शब्दों की सर्वथा अनदेखी व अनसुनी सी हो रही है जहाँ कहा गया है-

तद्विद्धि प्रणिपातेन, परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति तद्ज्ञानं, ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।।

इसके अतिरिक्त एक अन्य सूत्र 'सतुनैरन्तर्येण सत्कारासेवितो दृढभूमिः' का उल्लेख हुआ है तथा तज्जपस्तदर्थभावनम् भी इसमें समाहित हुआ है। इसी प्रकार यह क्रम आगामी अङ्कों में श्री प्रभु जी व सद्गुरुदेव के कृपा प्रसाद स्वरूप प्रकाशित होता रहे, यही मनोऽभिलाषा है। जय गुरुदेव। इति शम्।

मन्त्रयोग विज्ञान

पूर्णचन्द्र पन्त

मन की एकाग्रता से योग आरम्भ होता है। योगशास्त्र में मन की एकाग्रता के लिये जितने उपाय बताये गये हैं उनमें मन्त्रयोग प्रमुख है। "मननात् त्रायत इति मन्त्रः" इस परिभाषा के अनुसार जपकर्त्ता के मन को एकाग्र करना एवं सब प्रकार विघ्नों और भयों से उसकी रक्षा मन्त्र शब्द का अर्थ है। तन्त्रशास्त्र में कहा गया है:-

मोचयन्ति च संसारात योजयन्ति परे शिवे।
मनन त्राण धर्मित्वात्तेन मन्त्रा इति स्मृताः।।

अर्थात्-मन्त्र जपकर्ता साधक को संसार बन्धन से छुड़ाकर परम कल्याणकारी परमेश्वर से मिला देते हैं। मनन त्राण-धर्मी होने के कारण ही उन्हें मन्त्र कहा जाता है।

मन्त्रयोग इस सिद्धान्त पर आधारित है- सृष्टि से पूर्व केवल एक परमात्मा थे। उनके मन में सृष्टि रचना का भाव आया और भाव से नाम-रूपात्मक यह संसार बना। जिस क्रम से सृष्टि हुई है उससे विपरीत मार्ग से लय होना भी निश्चित है। इसलिये मुक्तिलाभ के लिये साधक को सर्वप्रथम नाम-रूप का ही आश्रय लेना पड़ता है। नाममय शब्द अर्थात मन्त्र और भावमय रूप का अवलम्बन लेकर भावग्राही परमात्मा में चित्तवृत्ति का लय हो जाने से जीव बन्धनमुक्त हो जाता है।

योगशास्त्र में मन्त्रयोग को स्वाध्याय कहा गया है और उसका फल सिद्धों की कृपा तथा समाधि की प्राप्ति बताया गया है। योगदर्शन में साधनपाद के पहले सूत्र में क्रियायोग के अन्तर्गत स्वाध्याय शब्द की परिभाषा करते हुए भाष्यकार श्री व्यासदेव जी महाराज ने कहा है:-

ओंकार आदि पवित्र मन्त्रों का जप करना या वेद, उपनिषद, गीता, महाभारत, भागवत्पुराण आदि मोक्षदाता ग्रन्थों का पाठ और मनन करना स्वाध्याय कहलाता है। योगदर्शन के ही समाधिपाद के सूत्र संख्या 27, 28 और 29 में महर्षि पतंजलिदेव जी महाराज ने मन्त्रजप की महिमा इस प्रकार बताई है:-

तस्य वाचकः प्रणवः। तज्जपस्तदर्थ भावनम्।
ततः प्रत्यक् चेतनाऽधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च।

अर्थात्-उस ईश्वर का नाम ओंकार है। इसलिये ओंकार का जप करना चाहिये और उसके साथ साथ नामी परमेश्वर का ध्यान करना चाहिये। ऐसा करने से योगमार्ग के सभी विघ्न दूर हो जाते हैं और साधक को अन्तरात्मा के दर्शन हो जाते हैं। इस विषय को अधिक स्पष्ट करते हुए प्रातः स्मरणीय श्री व्यासदेव जी महाराज ने अपने भाष्य में लिखा है:-

स्वाध्यायाद्योगमासीत योगात्स्वाध्यायमामनेत्।
स्वाध्याय योग सम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते।।

अर्थात्- साधक स्वस्तिकासन, पद्मासन, सिद्धासन आदि किसी आसन पर अपनी गर्दन, सिर एवं कमर को एक सीध में रखता हुए बैठे। इस प्रकार बैठकर पहले तो कम से कम एक घंटा अपने गुरुमन्त्र अथवा इष्टमन्त्र का जप करे। जप करते करते जब मन एकाग्र होने लगे तो अपने इष्टदेव का ध्यान करना आरम्भ कर दे। ध्यान में यदि मन न लगे तो पनः जप करना आरम्भ कर दें। जप में यदि मन न लगे तो दो-चार मिनट ले ओंकार का उच्च स्वर से जप करना चाहिये और उसके बाद अपने मन्त्र का उपांशुजप करना चाहिये । तदनन्तर पुनः ध्यानाभ्यास करना चाहिये। इस प्रकार जप के बाद ध्यान और ध्यान के बाद जप का दीर्घकाल तक अभ्यास करने पर साधक को अन्तरात्मा के दर्शन हो जाते हैं।

मन ही मनुष्य के बन्धन और मोक्ष का कारण है मन अत्यन्त शक्तिशाली है किन्तु संकल्प-विकल्पात्मक होने से वह प्रतिक्षण किसी न किसी विषय पर चिन्तन करता रहता है। जिससे उसकी शक्तियाँ बिखरी रहती हैं। एक समय में एक ही विषय पर चिन्तन हो सकता है। यदि कोई दूसरा विषय सामने आये तो मन उसी विषय पर ही चिन्तन करना आरम्भ कर देता है। उसके चिन्तन का पहला विषय स्वतः ही छूट जाता है। मन्त्रयोग मन की चंचलता को मिटाने का, उसके चिन्तन की दिशा बदलने का और उसे अन्तर्मुखी बनाने का एक उत्कृष्ठ एवं सरल साधन है। मन को मन्त्ररूपी डोरी से बाँधकर सब ओर से हटाकर आत्मचिन्तन में लगाये रखना मन्त्रयोग कहलाता है।

मन्त्रजप दो प्रकार का होता है- वाचिक और मानसिक। वाचिक जप के पुनः दो भेद हैः-

(1) ऊर्ध्व और (2) उपांशु

इसी प्रकार मानसिक जप के भी दो भेद हैं-

(1) मनन और (2) ध्यान।

बोलकर किसी मन्त्र का जप करना ऊर्ध्व जप कहलाता है। यदि जप करते हुए आवाज बाहर न सुनाई दे किन्तु होठ और जिह्वा हिलती रहे तो वह जप उपांशु जप कहलाता है। श्वास-प्रश्वास द्वारा मन्त्र का जप या मन ही मन मन्त्र का मनन करते रहना मानसिक जप कहलाता है।

उपनिषदों में मन्त्रयोग की महिमा का स्थान स्थान पर वर्णन मिलता है। श्वेताश्वतरोपनिषद में कहा गया है कि- मन्त्रजप और ध्यानाभ्यास द्वारा अन्तःकरण का मंथन करते रहने से अपने ही अन्दर छिपे हुए परमात्मा प्रकट हो जाते हैं।

कठोपनिषद में ओंकार के जप की महिमा के वर्णन में कहा गया हैः-

एतद् ह्येवाक्षरं ब्रह्म एतद् ह्येवाक्षरं परम्।
एतद् ह्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्।।
एतदालम्बनं श्रेष्ठं एतदालम्बनं परम्।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते।।

यह अविनाशी ओंकार ही परमेश्वर का स्वरूप है और यही पर ब्रह्म पुरुषोत्तम है। अतः इस तत्व को समझकर साधक इसके द्वारा अपनी अभीष्ट वस्तु को प्राप्त कर सकता है।

यह ओंकार ही परमेश्वर का प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन है। इससे परे और कोई सहारा नहीं है। इस रहस्य को समझकर जो साधक श्रद्धापूर्वक इस ओंकार पर निर्भर रहता है वह परमात्मा को पा लेता है, यह निश्चित बात है। इसलिये-

वचसा तज्जपेन्नित्यं वपुषातत्समभ्यसेत्।
मनसा तन्स्मरेन्नित्यं तत्परं ज्योतिरोमिति।।
शुचि वाप्यशुचिर्वापि यो जयेत्प्रणवं सदा।
न स लिप्यति पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा।।

उस परम ज्योति स्वरूप ओम का वाणी से सदा जप करते रहना चाहिये। शरीर से सदैव उसका अभ्यास करना चाहिये। अर्थात् अष्टांगयोग का अभ्यास करना चाहिये और मन से मन्त्र के नामी परमेश्वर का निरन्तर चिन्तन करते रहना चाहिये।

साधक चाहे पवित्र हो और चाहे अपवित्र हो उसे दोनों ही अवस्थाओं में सदैव मन्त्र जाप करते रहना चाहिये। जो व्यक्ति ऐसा करता है वह पाप से कभी लिप्त नहीं होता और संसार में रहता हुआ भी कमलपत्रवत् उससे निर्लिप्त रहता है।

मन्त्र चाहे कोई भी हो वह अनन्त शक्ति सम्पन्न होता है। सभी मन्त्रों के ऋषि और देवता होते हैं। किन्तु गुरुप्रदत्त मन्त्र की विशेष महिमा है। उसकी शक्ति की तो कल्पना तक नहीं की जा सकती। गुरुमन्त्र में और ओंकार में काई अन्तर नहीं है। क्योंकि सद्गुरु स्वयं की ओंकार स्वरूप होते हैं।

जब वे किसी को मन्त्रदीक्षा देते है तो मन्त्र को चिन्मय बनाकर उसे शिष्य को प्रदान करते हैं। मन्त्र के साथ गुरुदेव का सूक्ष्म शरीर अर्थात् उनका मन भी शिष्य के अन्दर प्रवेश कर जाता है। तब वह मन्त्र ही शिष्य का मार्गदर्शक और संरक्षक बन जाता है। शिष्य अपने गुरुमन्त्र का जितना अधिक जप करेगा वह गुरुदेव की उतनी ही अधिक समीपता अनुभव करेगा और उतनी ही अधिक उस पर सद्गुरु की कृपा होगी

मन्त्रयोग का वैज्ञानिक आधार यह है कि-जब हम किसी मन्त्र का उच्च स्वर से जप करते हैं तो उससे शक्ति की विशेष प्रकार की तरंगे उठती हैं जो कि - हमारे शरीर एवं आसपास के वातावरण को प्रभावित करती हुई महाकाश में व्याप्त हो जाती हैं, उपांशु जप एवं मानसिक जप से मस्तिष्क की नस - नाड़ियों में स्पन्दन होता है और विद्युत तरंगें उठती हैं जो कि - साधक के पुरे नाड़ी चक्र को एवं मन और बुद्धि को प्रभावित करती हुई अन्तर्जगतके सूक्ष्म आकाश में व्याप्त हो जाती हैं। परिणामस्वरूप मन की चंचलता समाप्त हो जाती है और वह बाहरी संसार से हटकर अन्तर्मुखी बनने लग जाता है।

श्वास-प्रश्वास से मन्त्रजप का अभ्यास परिपक्व हो जाने पर श्वासों की गति मूलाधार से लेकर आज्ञाचक्र पर्यन्त हो जाती है। जिससे मूलाधार चक्र पर धक्का लगते रहने से कुण्डलिनी शक्ति जागृत हो जाती है तथा मूलाधार आदि चक्रों के दर्शन होने आरम्भ हो जाते हैं।

दूसरा वैज्ञानिक आधार यह है कि - यह सृष्टि-पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश इन पाँच भूतों से बनी हुई है। स्थूल भूतों की अपेक्षा उनके सूक्ष्म रूपों में अधिक शक्ति होती है तथा उनसे भी अधिक शक्तिशाली उनकी तन्मात्रायें होती हैं।

उदाहरण के लिये पृथ्वी एक महाभूत है। इसमें पैदा होने वाली वनस्पतियां इसका स्थूल रूप है। ये वनस्पतियां सब प्राणियों को पुष्ट करती हैं। अतः इसमें पोषण करने की शक्ति होती है। किसी पदार्थ से निकाला गया सत उस पदार्थ से अधिक शक्तिशाली होता है, वनस्पतियों से ही तैयार किया जाने वाला इन्जेक्सन पृथ्वी तत्त्व का ही सूक्ष्म रूप है जो कि - उन वनस्पतियों से कई गुणा अधिक प्रभावकारी होता है। लोहा, सोना, चाँदी, मोती आदि धातुओं का सूक्ष्म रूप होने के कारण धातु से अधिक प्रभावकारी होती हैं। गन्धक, लोहा, रेडियम आदि धातुओं के सूक्ष्म परमाणुओं से बना हुआ परमाणु बम कुछ ही मिनटों में सारे विश्व को समाप्त करने की सामर्थ्य रखता है।

ठीक इसी प्रकार आकाश महाभूत का सूक्ष्म रूप (तन्मात्रा) शब्द है। "शब्द गुणात्मकं - आकाशम्" इस परिभाषा के अनुसार शब्द ही आकाश का गुणधर्म है। मन्त्र शब्दों से बने होते हैं। अतः आकाश तत्त्व की तन्मात्रा होने के कारण मन्त्र स्वतः ही शक्ति का रूप होता है। जहाँ शब्द होता है वहाँ उस शब्द से विस्फोट भी अवश्य होता है और जहाँ विस्फोट अथवा कम्पन होता है वहाँ शक्ति अवश्य प्रकट होती है।

मन्त्र का बार बार उच्चारण करने से उसे बार बार जपने से जो घर्षण होता है उससे ठीक उसी प्रकार शक्ति प्रकट हो जाती है जिस प्रकार आकाश में दो बादलों के घर्षण से (उनका आपस में टकराने से) बिजली प्रकट हो जाती है।

आरम्भ में साधक को उपांशु जप करना चाहिये। अर्थात् होंठ और जिह्वा हिलती रहे और आवाज बाहर न निकले। कुछ महीने तक प्रगाढ़ श्रद्धा के साथ, निरन्तर उपांशु जप करते रहने के बाद मन ही मन मन्त्रजप का अभ्यास करना चाहिये। एक दो वर्ष तक निरन्तर मानसिक जप करने के फलस्वरूप मन्त्र मन में प्रवेश कर जाता है। तब वह जप अजपा-जप में बदल जाता है और बिना प्रयास के ही मन ही मन जप होने लगता है। जब मानसिक जप का अभ्यास परिपक्व हो जाता है तो वह मन्त्र बुद्धि में प्रवेश कर जाता है। जिससे साधक की बुद्धि में सत्य का वास हो जाता है, उस स्थिति में वह जो कुछ कहता है, देखता है या अनुभव करता है वह सब सत्य ही होता है। दूर दूर घट रही घटनायें और भूत - भविष्य का उसे ज्ञान होने लग जाता है। कई बार जप करते-करते जप ध्यान में बदल जाता है और उसे दिव्य लोकों के सिद्ध पुरुषों एवं अपने इष्टदेव के दर्शन हो जाते हैं।

कभी-कभी वही जप मन्त्रयोग से लययोग में बदल जाता है और साधक की अपने इष्टदेव में, भगवान सदाशिव, गणपति देव या अखण्ड मण्डलाकार व्यापक तेज में लयता हो जाती है। उस समय वह अपने आपको बिल्कुल भूल जाता है और उसे उपना स्वरूप अपने इष्टदेव का स्वरूप ही नजर आता है।

उस समय वह ऐसा अनुभव करता है कि - यह सब मैं ही हूँ, मेरे अतिरिक्त और कोई सत्ता है ही नहीं। इस स्थिति को योगशास्त्र में अस्मितानुगत समाधि कहा जाता है। इसे ही राजयोग भी कहा जाता है जिसकी

अगली श्रेणी निर्बीज समाधि (असम्प्रज्ञात योग) है। इस प्रकार निरन्तर मन्त्रजप करते रहने से ज्यों ज्यों जप में सूक्ष्मता आती है त्यों-त्यों योगाभ्यासी के अन्दर शक्तियों का विकास होता जाता है। मन्त्रजप के फलस्वरूप अन्तःकरण की पूर्ण शुद्धि हो जाने से उसकी समाधि उत्तरोत्तर परिपक्व होती जाती है।

वस्तुतः मन्त्रदीक्षा से ही योग आरम्भ होता है। योग की चार श्रेणियाँ - मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग और राजयोग इनमें मन्त्रयोग सर्वप्रथम है। मन्त्रयोग से साधक राजयोग और सिद्धयोग तक पहुँचता है। यही कारण है कि - आदि योगी योगेश्वर श्री कृष्ण ने गीता में **"यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि"** कहकर मन्त्रयोग को अपना स्वरूप बताया है।

अतः हमें अपने जीवन को योगमय बनाने के लिये मन्त्रजप का अभ्यास बढ़ाना चाहिये।

ध्यान-साधना की परम्परा कायम हो!

हमारे पूर्वजों ने ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल और सुख-समृद्धि का ज्ञान स्कूलों एवम् कॉलेजों में जाकर नहीं लिया। उन्होंने अपनी अन्तःप्रेरणा और अनुभवों से ही सीखा कि ध्यान मन का मालिक बना देता है, अन्यथा जीवन भर मन की गुलामी ही गुलामी है। सच्ची स्वतन्त्रता मन के मालिक बनने में ही है। ध्यान हमारे भीतर के अनन्त ज्ञान को उद्घाटित करता है। इसलिए बचपन से ही ध्यान साधना की परम्परा, परिवार में, डाली जानी जरूरी है।

ध्यान-साधना से सहज-भाव अपने आप स्वास्थ्य लाभ होता है। ध्यान स्व में स्थित करता है और स्वास्थ्य शब्द का अर्थ भी-स्व स्थित, का संकेत करता है। अतः ध्यान ही स्वास्थ्य है और स्वास्थ्य ही ध्यान है। ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। ध्यान से हमारी छिपी शक्ति जो अनन्त है, जाग्रत होती है और तब हमें स्वास्थ्य भी मुफ्त मिलता है। लेकिन हमें यह मंजूर नहीं।स्वास्थ्य का खजाना हमारे अन्दर भरा पड़ा है, परन्तु हम उसे बाहर ढूंढने का व्यर्थ श्रम करते हैं तथा रोग हटाने के चक्कर में उलझते रहते हैं। आँख बन्द कर स्वरूप को जानिये और स्थित हो जाइये। इस साधना में एक क्षण ही तो लगता है।

—मोहनलाल

सिद्धपीठ (कामरूप) कामाख्या

पं० राजेन्द्रप्रसाद पाठक

शिवस्वरूप अनोदश्वर महाप्रभु द्वारा स्वहस्ताङ्कित लेखों में, अपने सिद्ध ब्रह्मचारियों के साथ असम (आसाम) गणराज्य की पद-यात्रा परिचर्चित है- ऐसा मनीषियों द्वारा भी कहा जाता है। उनके द्वारा यहाँ की तान्त्रिकता अज्ञान रूपों से परिकल्पित नर-भक्षिणी नदी, जो नाविकों द्वारा ही उपहासित: बोधित थी एवं फाँसी बाजार (गोहाटी स्थित फेन्सी बाजार) आदि के उल्लेख के साथ-साथ महादेव के पंचपीठ, सौभाग्यकुन्द, कामरूप – कामाख्या, वशिष्ट आश्रम, परशुराम कुन्द तथा दुरुह जंगलों में विचरण करने वाले गणपति स्वरूप मदमस्त गणराज्य (झुन्ड) गणों का भी पूर्ण वर्णन मिलता है। वह ही महाप्रभु आज भी इन स्थलों पर विराजमान हैं वस्तुत: उनके दर्शन वही कर सकते हैं जिन पर उनकी कृपा हो – श्री मद्भागवत महापुराण में वर्णन आता है कि – " जिस समय भगवान श्रीकृष्ण बलराम जी के साथ (कंस द्वारा आमंत्रित) रंगभूमि में पधारे, उस समय वे पहलवानों को बज्र-कठोर शरीर: साधारण मनुष्यों को नर-रत्न, स्त्रियों को मूर्तिमान कामदेव, गोपों को स्वजन, दुष्ट राजाओं को दण्ड देने वाले शासक; माता-पिता के समान बड़े-बूढ़ो को शिशु, कंस को मृत्यु, अज्ञानियों की विराट; योगियों को परमतत्व और भक्तशिरोमणि वृष्णिवंशियों को अपने इष्टदेव जान पड़े। " अर्थात् मानस की यह शैली संकेत है जिसमें भगवान श्रीराम, महाराज जनक के रंग भूमि में -

जिन्ह के रही भावना जैसी।
प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी।। (मानस)
मल्ला नाम शनिर्नृणां नरवर: स्त्रीणां स्मरोमूर्तिमान
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रो शिशुः।
मृत्युभोज पते विंराडविदुषां तत्त्वंपरंयोगिनां,
वृष्णीनां यस्देवतेतिविदितो रंङ्ग गतः साग्रजः।।

(श्री मद्भागवत (10/43/16)

अत: श्री गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा – "हे अर्जुन ! जो प्राणी भूतकाल में हो चुके हैं। जो वर्तमान में है और जो भविष्य में होंगे, उन सब प्राणियों को तो मैं जानता हूँ; परन्तु मेरे को कोई (मूढ़ मनुष्य) नहीं जानता "

'वेदाहं समतीतानि वर्तमानानिचार्जुन।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन्।।

(गीता 7/26)

ये महाप्रभु अपने भक्तों के कल्याण हेतु स्थानीय जनश्रुति को एक प्रतिष्ठापूर्ण नाम दिया तथा स्थानीय कुशङ्काओं को मिटाने हेतु इस (आसाम) मातृप्रधान देश का पौराणिक परिचय दिया एवं बताया कि – ब्रह्मा के संयोग से शान्तनु मुनि की पत्नी अमोघा के गर्भ से जलस्वरूप पुत्र ने जन्म लिया, जिसे श्री मुनि लोक कल्याण हेतु इस जलमय – ब्रह्म के पुत्र को चार पर्वतों के बीच संस्थापित किया जिससे ब्रह्मकुन्ड का अविर्भाव हुआ।

पर्वतों से आवेष्ठित ब्रह्मपुत्र - जलराशि के रूप में अगाध वृद्धि पाने लगा। महर्षि जमदग्नि के पुत्र परशुराम ने पिता की आज्ञा का पालन करते हुये अपनी माता रेणुका, जो पूजा के लिये जल लाने गयी थी; गंधर्व, क्रीड़ादर्शनादि के कारण विलम्ब होने के नाते, वध किया; पुनः पिता के उपदेशानुसार मातृहत्या के पाप मोक्षनार्थ पद-यात्रा करते हुये श्री परशुराम ने इसी ब्रह्मकुन्ड में स्नान व तर्पण किया तथा शन्ति एवं सुख की अनुभूति की। श्री परशुराम जी ने ब्रह्मपुत्र के पूर्व की ओर से तथा सिद्धपीठ-कामरूप-कामाख्या के मध्य से सागर की तरफ प्रभावित करवा दिया। परशुराम जी ने जहाँ स्नान किया उस स्थल एवं कुन्ड का नाम **"परशुरामकुन्ड"** नाम से विश्व विख्यात हुआ; जो वर्तमान समय में गोहाटी से पूर्व सदिया (आसाम) के पास अवस्थित हैं। अब भी प्रतिवर्ष तीर्थ यात्री गण जनवरी (संक्रान्ति) के समय इस परशुराम कुन्ड में स्नान कर तर्पण आदि करते हुये अमोघ शन्ति पाते हैं। ब्रह्मा का पुत्र होने के कारण इसका नाम ब्रह्मपुत्र हुआ स्वयं ब्रह्मा ने इसका नाम लोहित रक्खा। (लोहित मान) सरोवर उद्गम स्थल के कारण दूसरा नाम लोहित्य भी हुआ है। कालिका पुराण में ऐसा संकेत मिलता है कि जो व्यक्ति संयम पूर्वक चैत्र मास की शुक्ल अष्टमी को स्नान करते हैं वे कैवल्य पद की सम्प्राप्ति करते हैं।

"तस्मिन्नवसरे रामो जामदग्न्यः प्रतापवान। चक्रे मातृवधं घोरमयुक्तं पितुराज्ञया।। तस्य पापस्य मोक्षाय स्वपितुश्चोपदेशतः। स जगाम महाकुन्डं ब्रह्माख्यं स्नातुमिच्छया।। तत्र स्नात्वा च पीत्वा च मातृहत्या मपानयत। सोपी परशुना कृत्वा तं महिमाक्ष धतारयत्।।" (कालिकापुराण 82/41/46)

चैत्र मासि सिताष्टम्यां यो नरः नियोतान्दयः,। चैत्रन्तु सकलं मांस शुचिः प्रयतमानसः।। स्नाति लोहित्यतीये तु स याति ब्राह्मणः पदम्। लोहित्यन्तीये यः स्नाति स कैवल्यमवान्नुयात्।।"

(कालिका पुराण 83/33/36)

अतः श्री प्रभु जी ने संकेत किया कि जो जीव अपने कुसंस्कारों को मिटाने, सुसंस्कार को पनपने एवं संस्कार जन्य भोग भुक्त हेतु सत्संगति, तीर्थाटन, योगी जन्य स्थानादि दर्शन हेतु पद-यात्रा कर स्वयं (परमात्मतत्त्व) की अनुभूति करतें हैं उन्हें उस सर्वज्ञ, सर्वसुहृद, सर्वसमर्थ ईश्वर द्वारा दृष्ट कालान्तरिक-फल और अदृष्ट-फल का प्रारब्ध लौकिक जगत के लिये समाप्त हो जाता है।

पुराणदि की कथा के अनुसार रतिपति कामदेव भगवान शिव की क्रोधाग्नि से दग्ध एवं भस्मीभूत हुये तथा पुनः उन्हीं करुणानिधान श्री प्रभु कृपा से अपना पूर्वरूप यहीं, इसी कामाख्या (कामरूप) स्थल पर प्राप्त किये; इससे इसका नाम काम-रूप पड़ा। कुब्जिका तन्त्र स्वीकार करता है (तथा यहाँ के रहने वाले आदि वासी एवं असामिया वृन्द भी स्वीकृति देते हैं) कि इस स्थल पर कामना के अनुरूप फल प्राप्त होता है अतः इनका नाम कामरूप है। (ऐसा सभी जलवासी (बंगाली) की जनैश्रुति है।)

शंम्भुनेत्राग्निनिर्दग्धः काम शम्भोरनुग्रहात्।
तत्र रुपंयतः प्राप्य कामरुपं ततोऽभवत्।।

(कालिका पुराण 51/67)

कामरूपं महापीठं सर्वकामफलप्रदम्।
कलौ शीघ्र फलं देवी कामरूपे जपोस्मृतः।।

(-कुब्जिका तन्त्र सप्त पटल)

योगिनी तन्त्र में ऐसा वर्णन मिलता है कि संसार के सभी तान्त्रिक इन्हीं मायामयी- (प्रसाद) देवी क्षेत्र से अपनी अभिष्ट मन्त्रो-सिद्धि प्राप्त करते हैं। इन बातों का भी पूर्ण वर्णन महाप्रभु जी ने अपने हस्तलेख में दिया है तथा संकेत किया है कि उनके साथ आया हुआ एक शिष्य जो बिना सम्मार्जन एवं स्व-रक्षात्मक कवच योगाभ्यास किये यहाँ के गाँव (किसी) के संकीर्तन में जाने पर विक्षिप्ततः मन्त्रमुग्ध कर दिया गया था जिसे श्री प्रभु प्रसाद स्वरूप दूसरे शिष्य अन्वेषणात्मक कर परिशुद्ध किया तथा वहाँ के लोगों को मन्त्रात्मक भाव के कुरीतियों को अपने योगबल से समाप्त एवं परिशुद्ध किया।

श्री मद्भागवत महापुराण, श्री रामचरित मानस, कालिका पुराण, चूड़ामणि तन्त्रादि में भगवान शिवचरित्र वर्णन में वर्णनीय एवं उल्लेखित है कि -"जिस समय सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा और विष्णु सृष्टि कार्य आरम्भ करने वाले थे, उस समय योगेश्वर शिव महायोग में तल्लीन थे। यदि सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय के कर्त्ताओं में कोई भी प्रमुख रहे तो सृष्टिकार्य सम्पन्न नहीं हो सकता। अतः श्री ब्रह्मा जी ने अपने मानस पुत्र दक्ष को आज्ञा दी कि - हे दक्ष प्रजापति ! तुम जगन्माता की पूजा करो जिससे विश्व जननी तुम्हारी कन्यारूप में जन्मग्रहण कर भगवान शंकर की पत्नी बने। राजा दक्ष के कठोर तपस्या के बाद महामाया प्रकट होकर वर देती हुई बोलीं कि मैं तुम्हारी कन्या होकर शिव की पत्नी बनूंगी परन्तु यदि तुम मेरा अनादर करोगे तो मैं उसी समय देह त्याग दूंगी यथा समय आद्याशक्ति ने दक्ष राजपत्नी बीरिणी के गर्भ से कन्या रूप में जन्म लिया और श्री महादेव जी की आराधना कर उन्हें सन्तुष्ट किया। प्रजापति दक्ष ने अपनी कन्या का विवाह देवाधिदेव महादेव भगवान शिव के साथ सम्पन्न किया और वे सती के साथ कैलाश पर्वत पर विराजमान हुये।

एक बार स्वर्ग की देवसभा में राजा दक्ष के प्रति भगवान शिव ने आदर प्रकट नहीं किया। अतः दक्ष ने शिव-रहित यज्ञानुष्ठान कर नारद को शिव-पार्वती अतिरिक्त सम्पूर्ण विश्व को निमन्त्रण देने का आदेश दिया। सती देवी को नारद जी तथा अन्य लोगों से मालूम हुआ कि उनके पितृ गृह में यज्ञानुष्ठान हो रहा है। शिव के मना करने के बावजूद सती ने दृढ़तापूर्वक सदाशिव से आज्ञा लेकर परिषद वर्गों के साथ पिता के यज्ञस्थल में उपस्थित हुई। सती को बिना बुलाये आये देख राजा दक्ष ने अविराम शिव-निन्दा एवं अनर्गल बातें करते रहे जिसे सती सह न सकीं और पतिनिन्दा के कारण योगावलम्बन कर हृदय ज्वाला से यज्ञवेदी पर ही अपने प्राण त्याग दिये। इस समाचार को पाकर भगवान शिव ने क्रोधित होकर वीरभद्रादि सेवकों के साथ यज्ञशाला में प्रविष्ट होकर दक्ष प्रजापति का शिरच्छेदन एवं यज्ञ विध्वंस करने का आदेश दिया तथा अनुचरों ने ऐसा ही किया; बाद में दक्ष की पत्नी के प्रार्थना से आशुतोष भगवान प्रसन्न हो दक्ष के कबन्ध में बकरे का मस्तक जोड़कर उन्हें जीवित कर एवं अपने अनुचरों को कैलाश पर्वत पर भेज स्वयं सती-शव को कन्धे पर ले उन्मत सा त्रिभुवन में भ्रमण करने लगे।

स्कन्ध पुराण में वर्णन मिलता है कि ब्रह्मादि देवगणों की स्तुति स्वरूप भगवान विष्णु ने सोचा कि सती का शव एक चिन्मय वस्तु है और आदेशवर भगवान शिव के स्पर्श से इनका और भी महत्व बढ़ गया अतः जगटपालक विष्णु ने त्रिभुवन के कल्याणार्थ सती के शव को सुदर्शन चक्र द्वारा इक्यावन भागों में काट

डाला। इस प्राचीन-पवित्र-देव-अभिलाषित भारतवर्ष के जिन-जिन स्थलों पर सती के शरीरांश गिरे वे सभी स्थान पवित्र महापीठा में अग्रगण्य हो पूजित हो गये तथा पुण्यभूमि नाम से प्रसिद्ध हुये-(!)

"चक्रेण विष्णुना छिन्ना देव्या अवयवास्तु ते।
नियेतु धरणौ विप्र सा सा पुण्यतरा क्षिति।।
सिद्ध पीठा समाख्याता देवानामपिभूतले।
महातीर्थानि तन्याश्चन देवानामपिभूतले।।
भूमौ पतित मात्रास्ते देव्या अवयवाः किल।
जग्मुः पाषाणतां शीघ्र लोकानुग्रहहेतवे।।

(-वृहद्धर्म पुराण मध्यखन्ड 10/31/35)

कालिका पुराण में लिखा है कि यहाँ (गोहाणी) पर अवस्थित नीलाचल पर्वत पर सभी देवता पर्वत स्वरूप में अवस्थित हैं इस पर्वत के अखिल भूभाग को ज्ञानीपुरुष देवी का ही स्वरूप मानते हैं। पौराणिक वास्तविकता तो यह है कि सती का योनिमण्डल नीलाचल (पर्वत) के ऊपर गिरकर पत्थर बन गया और उसी प्रस्तरमय योनि में कामाख्या देवी नित्य अवस्थान करती हैं जो मनुष्य इस शिला को स्पर्श करते हैं वे अमरत्व को प्राप्तकर ब्रह्मलोक में निवास कर अन्त समय में मोक्ष प्राप्त करते हैं-(!)

सत्यास्तु पतितं तत्र विशीर्णं योनिमण्डलम्।
शिलात्वमगमच्छले कामाख्या तत्र संस्थिता।।
लीनपात योग निद्रायां मचि पर्वत रुपिणी।
सनीलवर्णः शैलोऽभूत पतिते योनिमण्डले।।

(- कालिका पुराण 62/55-78)

वृद्धर्म पुराण संकेत करता है कि जिस स्थान जर सती का भगमण्डल गिरा उसे कुब्जिका पीठ भी कहते हैं जो नीलवर्ण हो नीलाचल पर्वत से विख्यात है।

शिवपुराण की एक आख्यायिका में वर्णन है कि दक्ष राजा के यज्ञ में प्राण त्याग के बाद गिरिराज हिमालय के घर उनकी पत्नी मेनका के गर्भ से सती उत्पन्न हुई। देवी भागवत में संकेत आता है कि इन्हीं अधीश्वरी से उद्भूत षडानन ने तारकासुर का वध किया। सती-पार्वती ने जिस पवित्र आदर्श को विश्व के सम्मुख स्थापित कर पति प्राप्त किया है वह प्रत्येक कन्या के लिये अनुकरणीय है ब्रह्मवैवर्त पुराण में लिखा है कि - तीर्थ, पतिदेव, अभिष्टदेव गुरुमन्त्र और औषधि इत्यादि में जिनकी जैसी आस्था रहती है वैसी ही (उन्हें) सिद्ध होती है।

तीर्थेकान्तेऽभीष्टदेवे गुरौ मन्त्रे यथोषधे।
आस्था च यादृशोयेषां सिद्धिस्तेषां च तादृशो।।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण 39/ (श्रीकृष्ण जन्म खन्ड) /26)

उस करुणानिधान अनन्तेश्वर भगवान योगेश्वर महाप्रभु की परम-कृपा है कि इस स्थल पर सदिया के सन्निकट कौटिल्य नगर में विख्यात राजा भीष्मक जिनकी कन्या रुक्मिणी देवी का हरण कर श्रीकृष्ण ने विवाह किया। बलिराजा के वंशज शिव भक्त बाणासुर तेजपुर (शोणितपुर) दरंग जिले में राज्य किया। डोमापुर (प्राचीननाम हिडिम्बपुर) में ही लाक्षागृह का निर्माण किया गया था।

कालिकापुराण में वर्णन मिलता है कि प्राग्ज्योतिषपुर (गोहाटी) में, सृष्टि के प्रारम्भ में पितामह ब्रह्मा इसी स्थान पर बैठकर नक्षत्रादि का सन्निवेश कर जगत की सृष्टि की।

अस्य मध्ये स्थितो ब्रह्मा प्राऽनक्षत्र ससार्जह। ततः प्राग्ज्योतिषाख्यं पुरी शक्रपुरी समा।।

(-कालिका पुराण - 38/118)

ज्योतिष शास्त्रानुसार आषाढ़ माह के मृगशिरा नक्षत्र के बाद आद्रा नक्षत्र के चतुर्थ चरण तक पृथ्वी ऋतुमती मानी जाती है, अतः देवी का मन्दिर अम्बवाची योग होने के नाते तीन दिन बन्द रहता है तथा अग्नि स्पर्श न करते हुये भक्त वृन्द फलाहार करते हैं।

उर्वशी कुन्ड जो, उमानन्द पहाड़ या भस्मकूट पहाड़ के दक्षिण ब्रह्मपुत्र नदी के मध्य में अवस्थित है, अति दर्शनीय स्थल है। कहा जाता है कि रुक्मिणी हरणादि के समय भगवान श्रीकृष्ण के अश्वों ने क्लान्त होकर इसी ब्रह्मपुत्र में जल पिया था। अतः इस स्थल का नाम अश्वक्लान्त भी है।

पूर्णा पुरुष

योगेश्वर कृष्णा का जीवन पूर्णा है। वह उत्तम योगी आचार्य और तत्व-ज्ञान के उपदेष्टा थे, राज नीति शास्त्र के अनुपम ज्ञाता और अस्त्र-शस्त्र विद्या में प्रवीणा थे, उत्कृष्ट गोपाल और किसान थे और सबसे बढ़कर युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में उन्होंने अपने को उत्कृष्ट शूद्र होने का भी प्रमाण दिया है। भारतीयों में और विशेषकर हिन्दुओं में कुछ कर्म करने के कारण मनुष्यों को हीन समझने की जो मनोवृत्ति है उसका योगेश्वर कृष्णा के जीवन से स्पष्ट विरोध है। कर्म बुरा नहीं होता उसके पीछे भावना बुरी या भली होती है। प्रत्येक कर्म सात्विक, राजस और तामस तीन प्रकार का होता है। यज्ञ तक भी तामस होते हैं यदि उनके पीछे भावना तामस हो।

—श्री दिव्य

श्री मोहनलाल पर कृपा

केशव देव उपाध्याय (वाराणसी)

आदरणीय गुरुभाई श्री मोहनलाल जी अग्रवाल का विवाह सन् 1958 में एक आस्तिक अग्रवाल परिवार की लड़की द्रौपदी देवी के साथ हुआ था। कुमारी द्रौपदी देवी के ससुराल का नाम श्रीमती मंजू देवी है। भाई श्री मोहनलाल जी मेकेनिकल इन्जिनियर हैं। कुछ समय तक इन्होनें सरकारी नौकरी की परन्तु चन्द वर्षों बाद ही उस नौकरी से त्यागपत्र देकर मुजफ्फरनगर के शामली शहर में एक फैक्ट्री डाली जिसमें बैलों द्वारा खींचे जाने वाली बैलगाड़ी के धुरें एवं पार्ट बनाने का काम होने लगा। बैलगाड़ी के पार्ट्स तैयार तो श्री मोहन लाल जी की फैक्ट्री में होते थे परन्तु उन पर कम्पनी का मार्का का नाम डनलप कम्पनी का लगाया जाता था। लाभ की राशि ज्यादे होने से व्यापारियों ने इसे अत्यधिक सक्रियता से अपनाया एवं कुछ ही समय मे इसका बाजार पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं बिहार में अच्छा हो गया। परिणाम स्वरूप कोट, पैन्ट, टाई, शर्ट पहनकर ये नम्बर दो के अच्छे सरकारी आफिसर श्री आर॰ एन॰ माहेश्वरी के बगल में अच्छे परिवार के साथ रहते थे। श्री माहेश्वरी जी की पत्नी का नाम श्रीमती रेखा देवी है। श्री मोहन लाल जी एवं श्री माहेश्वरी जी आपस में लंगोटिया (घनिष्ट) मित्र थे एवं इन दोनों की पत्नियां भी आपस में घनिष्ट सहेलियों की तरह रहती थीं। आदरणीय भाई श्री माहेश्वरी जी आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेव जी महाराज से पहले से ही दीक्षित थे एवं सपत्नीक श्री गुरुदेव भगवान के योग प्रचार कार्यक्रमों में भाग लिया करते थे। उन्हीं दिनों दिसम्बर सन् 1963 में श्री सद्गुरुदेव भगवान का योग प्रचार कार्यक्रम शामली मे हुआ। श्री माहेश्वरी जी ने श्री मोहन लाल जी से भी गुरुदेव भगवान के इस योग प्रचार कार्यक्रम में भाग लेने का अनुरोध किया। इसके लिए मोहन लाल जी ने साफ इन्कार कर दिया परन्तु इनकी पत्नी ने माहेश्वरी परिवार के साथ उस कार्यक्रम में पूरा भाग लिया। इनकी पत्नी ने गुरुदेव भगवान से प्रार्थना की कि महाराज हमारे पतिदेव की वृत्ति नास्तिक है एवं वह ईश्वर एव महात्माओं को न तो मानते हैं एवं न उनके प्रति उनके मन में श्रद्धा है। आप किसी भी प्रकार से उनकी वृत्ति बदलने की कृपा करें। इतना कहकर इनकी पत्नी रो-रोकर सिसकने लगी। उनके सिर पर आशीर्वाद का हाथ फेरते हुए श्री प्रभु जी ने कहा - 'अरी द्रौपदी! रोती क्यों है, श्री प्रभु जी सब ठीक कर देंगे। अराध्य देव जी के मुखार बिन्दु से अपना यह नाम सुनकर जिसे ससुराल में इनके सिवा कोई नहीं जानता था, इन्हें महान आश्चर्य हुआ एवं गुरुदेव के अन्तर्यामी होने का विश्वास हो गया। गुरुदेव भगवान का शामली का कार्यक्रम पाँच दिनों का था। श्री माहेश्वरी जी द्वारा विशेष आग्रह करने पर एक दिन श्री मोहन लाल जी गुरुदेव भगवान को देखने गये। जिस समय ये गुरुदेव के सामने गये उस समय गुरु जी महाराज चौकी पर विराजमान थे एवं उनके सामने गुरुभाई-बहन बैठे हुये थे।

आने वाले प्रत्येक गुरुभाई बहन अराध्यदेव जी का चरण-स्पर्श करके उनके सामने बैठ जाया करते थे, ऐसा ही श्री माहेश्वरी जी ने सपत्नीक किया एवं इनकी पत्नी ने भी किया। श्री मोहन लाल जी जब आराध्यदेव जी के सम्मुख गये तब उपहास करने की भावना से खिल-खिलाकर हंसे एवं फिर नमस्ते जी कहकर बैठ गये। श्री प्रभुजी ने अपना दाहिना हाथ उठाकर अभय मुद्रा का भाव बनाकर मधुर मुस्कान के साथ आशीर्वाद दिया एवं कहा कि बैठ जाओ लल्ला। बिना भाव के ये कुछ समय वहाँ रहे एवं फिर घर वापस आ गये। सायंकाल जब श्री माहेश्वरी जी के क्वार्टर पर बैठक लगी तो इन्होंने माहेश्वरी जी से कहा - क्यों माहेश्वरी! पढ़ा लिखा मनुष्य भी इतना मूर्ख हो सकता है जितना तुम हो, यह आज हमने जाना। हमारी समझ में नहीं आता कि तुमने इसको अपना गुरु क्यों और कैसे बना लिया, तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है। तुमको यदि गुरु बनाना था तो किसी साधु महात्मा को गुरु बनाया होता। इनसे अच्छे तो हम ही हैं। यदि ऐसा ही गुरु बनाना था तो हमको ही बना लिया होता। हम तो उस मूर्ख से ज्यादे समार्ट हैं। श्री माहेश्वरी जी बीच-बीच में कहते रहे कि अरे मित्र! गुरुदेव के लिए ऐसे शब्दों का फिर प्रयोग किया तो हमारी तुम्हारी मित्रता आज ही समाप्त हो जायेगी। उसी समय श्री मोहन लाल जी को एक तार मिला उन्होंने उसे खोलकर देखा तो उसमें अंग्रेजी में लिखा था "पेमेन्ट रेडी, कम सून" अर्थात् सामान का पैसा इकट्ठा हो गया है, जल्दी आकर ले जाओ। तार पडरौना जिला देवरिया से आया था। पत्र पढ़कर ये बड़े प्रसन्न हुए एवं कहने लगे–देखा माहेश्वरी! तुम्हारे गुरु को पचीसों गाली दिया, अपशब्द कहे, उपहास किया एवं उसका फल यह मिला कि हमको काफी पैसा मिला। माहेश्वरी जी ने कहा कि अरे भाई, चाहे जो भी हो, गुरु जी को अपशब्द मत कहो यही तुमसे मैं निवेदन कर रहा हूँ।

बैठक से उठकर वे अपने निवास स्थान आ गये, भोजन किया एवं अटैची तथा होलडाल लेकर पडरौना के लिये प्रस्थान किया। गोरखपुर में भी इनके व्यापारी थे अतः ये गोरखपुर में उतर कर होटल गये एवं वहाँ से तैयार होकर व्यापारी के पास पहुँचे। वहाँ व्यापारी ने इनका बहुत ही आदर सत्कार के साथ स्वागत किया एवं अपनी गद्दी पर ही बैठाया। उस समय वहाँ तीन आदमी और उपस्थित थे जो अच्छी वेशभूषा में थे। उसे व्यापारी ने इन लोगों के लिए नास्ते का इंतजाम किया, नास्ता आया एवं सभी लोगों ने नास्ता किया। इसी बीच उस व्यापारी ने वहाँ उपस्थित तीन अन्य लोगों से इनका परिचय कराया एवं कहा कि हमारी दुकान से सामान ले जाने वाले ये आपके छोटे व्यापारी हैं! इसी बीच उन तीनों में से एक ने कहा कि इस बार जो माल आपने सप्लाई किया है उस पर जो डनलप का मार्का लगा है, वह साफ नहीं आया है। उस व्यापारी से यह बात सुनकर श्री मोहन लाल जी बड़े ही गर्व से कहने लगे, हाँ कुछ मार्का साफ नहीं लगा था परन्तु इस बार जो आपको सामान मिलेगा उसको देखकर तो ग्राहक उससे इतना प्रभावित होगा कि उसे डनलप कम्पनी का असली सामान ही फर्जी लगने लगेगा। इतना कहकर ये अपने बुद्धि चातुर्य पर अभिमान करके तन कर बैठ गये। एक मिनट बाद ही वातावरण बिल्कुल बदल गया। वास्तव में बात यह थी कि व्यापारी के साथ बैठने वाले अन्य तीन आदमी सी॰ आई॰ डी॰ के थे एवं जब उन्होंने फर्जी माल

बरामद किया तो उन्होंने व्यापारी से कहा कि हम तुम्हें तभी छोड़ेंगे जब तुम इसे तैयार करने वाले फैक्ट्री मालिक को पकड़वाओगे। वास्तव में यह इन्हें पकड़ने की योजना थी जिसमें ये अच्छी प्रकार अपने बयान के कारण फंस गये थे एवं पकड़कर हवालात में डाल दिये गये। जब ये हवालात में डाल दिये गये तो उन्हें माहेश्वरी जी एवं उनके गुरुदेव की याद आयी। तब ये मन ही मन पश्चाताप करके विलाप करने लगे। दो घंटे के करीब ये किम कर्त्तव्य विमूढ़ होकर रोते रहे एवं बार-बार श्री प्रभु जी को कहे अपशब्द एवं उपहास याद आते रहे। अन्त में हारकर आँख बन्दकर प्रार्थना किये कि हे माहेश्वरी के गुरुजी! यदि आप सच्चे महापुरुष एवं महात्मा हैं तो हमें इस विपत्ति से छुड़ाने की कृपा करें। इन्हें तत्काल ही श्री गुरुदेव जी द्वारा दिये गये आशीर्वाद एवं अभयमुद्रा का दर्शन हुआ। कुछ देर बाद इनके व्यापारी का कम्पटीटीव पडरौना का व्यापारी इनसे हवालात में मिलने आया एवं कहा कि साहब, आपने तो हमारे अनेक अनुरोध बावजूद भी अपना माल हमें बेचने को नहीं दिया परन्तु आप चिन्ता न करें। हम दो तीन घण्टे में ही आप की जमानत कराके आपको स्वतंत्र कराते हैं चाहे इसमें हमारा कितना ही पैसा क्यों न लगे परन्तु मैं वादा करता हूँ कि आप तीन घंटे के अन्दर जेल से बाहर होंगे। आपको इससे मुक्त होने के बाद सिर्फ इतना करना है कि आपको अब इसे माल ने देकर हमें देना है। श्री मोहन लाल जी ने यह शर्त मान ली एवं उससे बहुत अनुनय-विनय किया कि भाई किसी प्रकार मुझे इससे बाहर निकालो। व्यापारी ने अपने प्रशासनिक प्रभाव एवं धन के बल पर इन्हें मुक्त करा दिया। मुक्त होने के बाद इन्होंने इस व्यापारी से बार-बार आभार व्यक्त किया एवं फिर उसको सामान देने का वादा करके वापस यात्रा को चल दिये।

गोरखपुर स्टेशन से इन्होंने वापसी का प्रथम श्रेणी का टिकट लिया एवं जाकर केबिन में सामान रखा। मजे में सिगरेट पीते हुए सोचते रहे कि माहेश्वरी के गुरुदेव की कृपा से छूट पाये हैं। परन्तु धीरे-धीरे यह बात लुप्त हो गयी एवं सोचने लगे, इसमें गुरुदेव का क्या काम है। ये तो मोहन लाल की इन्जिनियरिंग का कमाल है कि दूसरा व्यापारी तत्काल माल लेने के लालच तथा ज्यादे लाभ कमाने की नियत से आकर जमानत दे दिया एवं मुक्त कर दिया। यही सोचते हुए ये केबिन से निकलकर दरवाजे पर आकर सिगरेट सुलगाने लगे। उसी समय एक लड़की जो आधुनिक फैशन की वेशभूषा में अच्छी प्रकार से सुसज्जित थी एक सूटकेस लेकर आयी। उस लड़की ने अपना सूटकेस इन्हें पकड़ाते हुए कहा कि गाड़ी चलने वाली है, अभी कुछ और सामान रखा है मैं अभी लेकर आ रही हूँ। उस समय भाई जी की उम्र चौबीस या पच्चीस वर्ष होगी। इस उम्र के सांसारिक बच्चों में क्या भावना होगी आप समझ रहे होंगे। ये अपने केबिन में गये एवं अपनी सीट पर बैठे एक मोलवी को वहाँ से डाँट कर हटाया एवं कहा कि हमारा परिवार आ रहा है, तुम उधर बैठ जाओ। फिर ये आकर गाड़ी के दरवाजे पर इन्तजार करने लगे। गार्ड ने झंडी दिखायी और गाड़ी चल दी परन्तु वह लड़की नहीं आयी। ये जाकर अपनी सीट पर बैठे एवं सोचते रहे कि हो सकता है कि गाड़ी छूटते समय वह दूसरे डिब्बे में बैठ गयी हो। कानपुर स्टेशन के पास गाड़ी इक्साइज कर्मचारियों द्वारा चेक की गयी.। जब चेकिंग स्टाफ ने पूछा कि यह सूटकेस किसका है तो इन्होंने कहा कि हमारा

है। उन सबों ने जब इनसे सूटकेस खोलने को कहा तो इन्होंने कहा कि यह सूटकेस हमारे मित्र नन्दलाल का है। जो दूसरे डिब्बे में बैठ गया है। फंफूद स्टेशन पर गाड़ी की क्रासिंग पड़ी तो इक्साइज कर्मचारियों ने इन्हें पकड़कर प्रत्येक डिब्बे में आवाज दिला-दिलाकर नन्द लाल की खोज की परन्तु नन्दलाल रहे तब तो मिले। इक्साइज वालों ने फिर जब सख्ती से पूछताछ की तो इन्होंने असली बात बतायी। इक्साइज वालों ने इन्हें अपशब्द कहा और कहा कि बहुत हरामी आदमी है तीन बार बयान बदल चुका। इसके बाद गाड़ी चल दी एवं यह इक्साइज वालों के साथ इटावा पहुँच गये। इटावा स्टेशन पर इक्साइज वालों ने सूटकेस का ताला तोड़कर देखा तो आश्चर्य में पड़ गये। सूटकेस में मात्र एक दिन के एक बच्चे के शव के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। उन सबों ने इन्हें इटावा स्टेशन पर सामान के साथ उतार लिया एवं इनसे कड़ी पूछताछ आरम्भ की। इन्होंने सत्य बतलाने की अनेकों बार कोशिश की परन्तु प्रत्येक बार सब यही कहते थे कि एक दम चार सौ बीस है, ले चलो इसे बिना पिटायी किये सही बात नहीं बतलायेगा। रेलवे थाने के पास जहाँ इक्साइज वाले इन्हें ले गये थे, वहाँ इन्हें देखने के लिए इनके चारों ओर भीड़ एकत्र हो गयी। भीड़ ने इन्हें अनेक प्रकार से अपशब्द कहे, इनके कपड़े खींचे एवं इनके बाल नोंचे। इनकी इतनी बेइज्जती हुई कि ये आत्मग्लानि से रोने लगे। एक खम्भे के सहारे ये खम्भे से सिर टिकाकर खड़े थे एवं बार-बार अपने कर्त्तव्य पर ग्लानि महसूस कर रहे थे तथा इनकी आँखों से अश्रुधारा निकल रही थी। एक बार इन्हें फिर श्री प्रभु जी की याद आयी एवं इन्होंने आँख बन्द करके मन ही मन प्रार्थना की कि हे माहेश्वरी के गुरुदेव! अबकी बार मुझे इस विपत्ति से छुटकारा दिला दो फिर मैं आपके दर्शन अवश्य करूँगा। इन्हें फिर श्री प्रभु जी के पूर्व अभय मुद्रा के आशीर्वाद का प्रत्यक्ष दर्शन हुआ। उसके कुछ क्षण उपरान्त इन्होंने अपनी आँख खोली तो ईंजन के पीछे के दूसरे नम्बर के डिब्बे से वह लड़की निकलकर बाहर जाती दिखायी दी। उन्होंने जोर से आवाज लगायी उस लड़की को पकड़ो, यह उसी की अटैची है परन्तु इनकी बात पर किसी को विश्वास नहीं हुआ एवं सबों ने कहा कि बहुत हरामी है, चौथी बार बयान बदल रहा है। यह भागने के प्रयास में है। इन्होंने भीड़ के लोगों से अनुरोध किया कि केवल एक दो आदमी उसे यहाँ बुला लावें बल्कि लोग मुझे पकड़े रहें। खैर दो आदमी गये एवं उस लड़की को इनके पास बुलाकर लाये। वह लड़की जब इनके पास आयी तो खूब अच्छी प्रकार पहचान कर इन्होंने हाथ जोड़कर उस लड़की से यह कहा कि बहन जी, यह आप अपना सूटकेस संभालिये। इस पर लड़की ने इनसे अंग्रेजी में कहा–"ह्वाट नानसेन्स" (यह कैसी मुर्खता पूर्ण बात है।) इस सूटकेस से हमारा क्या सम्बन्ध है। इतना कहकर वह चलती बनी। इसके बाद सबों ने लड़की की बात पर विश्वास कर लिया एवं कहा कि उच्च खानदान की लड़की पर मिथ्या आरोप लगाता है। इसने चौथी बार झूठ बोलकर बचने की कोशिश की है। पिटायी करने के बाद जब यह जेल की हवा खायगा तो इसका दिमाग ठिकाने आयेगा। इन्होंने मन ही मन अनेक बार श्री प्रभु जी को बारम्बार प्रणाम किया एवं प्रार्थना की कि प्रभो! इस बार हमारी रक्षा करने की कृपा करें। काफी भयभीत होकर इन्होंने आर्तभाव से प्रार्थना की थी। वह लड़की मुश्किल से सौ कदम आगे गयी होगी

कि वापस लौट कर फिर इनके पास आयी एवं उसने कहा कि आप लोग इन्हें मारिये पीटिये मत। वास्तविकता यह है कि यह सूटकेस हमने ही इनको गोरखपुर स्टेशन पर दिया था एवं बच्चा हमारा ही है। यह एक धनी परिवार के लड़के की नाजायज सन्तान है और मैं उसी के घर जा रही थी। उसके इतना कहने के बाद इनकी वहाँ से मुक्ति हो पायी एवं यह फिर उसके बाद शामली आ गये। माहेश्वरी जी की धर्मपत्नी ने इनके कष्ट की बात जान ली थी अतः वहाँ सभी लोग घबराये हुए थे। वहाँ जाकर सब लोगो ने जब इसका समाचार पूछा तो इन्होंने संक्षेप में यह कहकर मामला शान्त कर दिया कि मुसीबत में पड़ गया था परन्तु तुम्हारे गुरुदेव की कृपा से बच गया। शामली आकर प्रथम कार्य जो इन्होंने किया वह यह कि फर्जी नाम का सामान तैयार करने का धन्धा छोड़ दिया एवं कुछ दिन वह फैक्ट्री ही बन्द कर दी एवं दूसरे कार्य की तलाश में लग गये। सब लोगों ने इनसे कहा कि चलो देर आये दुरुस्त आये। अनाथनाथ श्री सद्गुरु देव भगवान की अहैतुकी कृपा का स्पष्ट एवं स्थूल अनुभव हो जाने पर इनके सांसारिक मन ने यह दृढ़ निश्चय किया कि एक व्यापारी सेठ की तरह दिखने वाले श्री आर० एन० माहेश्वरी के गुरुदेव सचमुच ही सर्वसमर्थ एवं अन्तर्यामी सिद्ध योगीराज हैं। कारण की परासत्ता ईश्वर से चाहे किसी भी प्रकार का सम्बन्ध कायम हो जाय (मित्र, शत्रु, पिता, पुत्र इत्यादि) प्राणि का कल्याण होना ही है जो इनमें विद्यमान है, अतः ये ईश्वर हैं। तत्पश्चात माहेश्वरी परिवार के साथ श्री महाप्रभु जी के जन्मोत्सव चैत्र रामनवमी पर उन्होंने सवांई धाम जाकर सन् 1964 में गुरुदेव भगवान से स्थूल रूप से योग दीक्षा ग्रहण की।

अमृत बिन्दु

मनुष्य प्रारब्ध के अनुसार पाप पुण्य नहीं करता क्योंकि कर्म का फल शुभ नहीं होता, प्रत्युत भोग होता है।

जो साधन सुगम दीखें, उसे करना शुरु कर दें तो जो कठिन दीखता है, वह सुगम हो जायगा तो कठिन दीखता है, वह सुगम हो जायगा और जो समझ मे नहीं आता, वह समझ में आने लग जायगा।

अपना जीवन अपने लिए नहीं है, प्रत्युत दूसरों के हित के लिए है।

जो बचपन और जवानी में भजन नहीं करते, वे प्रायः बुढ़ापे में भजन नहीं कर सकते।

संसार, जीव और परमात्मा इन तीनों को न जानना अन्धकार है, जो इस अन्धकार को मिटा दे, वह गुरु है।

स्वार्थ और अभिमान का त्याग किए बिना मनुष्य श्रेष्ठ नहीं बन सकता।

—स्वामी श्री रामसुखदास जी महाराज

जीने की कला

श्री विष्णु प्रसाद [illegible]

शिवजी महादेव कहाते हैं परन्तु वे भी अपने मस्तक पर लगे हुए आधे चांद को पूर्ण नहीं कर सकते। उसके घटने बढ़ने के दोष को हर नहीं सकते। गणेशजी उन शिवजी के पुत्र हैं-सम्पूर्ण सिद्धियों के दाता हैं-एक पुत्र उनका कार्तिकेय है जो देव सेनाओं का सेनापति है-उमा उनकी अर्धांगनी है-कुबेर उनका सखा है। इतने भक्ति सम्पन्न परिवार वाले होते हुए भी महादेवजी के भाग्य में खप्पड उठाकर भीख मांगना लिखा है। नग्न वे रहते हैं-यह सब विधि की विडम्बना नहीं तो और क्या है? नीति विन्दों का कथन है-

अवश्यं भाविनो भावा भवन्ति महतामपि।
नग्नत्वं नीलकण्ठस्य महाहिशनं हरे।।

हिन्दी के कवि श्री गिरधरजी भाग्य की प्रखरता पर एक छन्द लिखते हुए कथन करते हैः-

अवश्य मेव भोगत है कृतकर्म शुभाशुभजोय।
ज्ञानी हंसकर भोगि हैं, अज्ञानी भोगें रोय।।
अज्ञानी भोगहिं रोय, पुनः पुन मस्तक कूटे।
परारब्ध जो होय बिना भोगे नहिं छूटे।।
कहे गिरधर कविराय, न दीरघ होत दुरस्व।
जैसे जैसे भाग पुरूष को फवें अवश्य।।

अतः प्रभुविश्वास सबसे उत्तम पूंजी है जिसे हर समय संचित करना चाहिये। सुख दुःख तो कर्म चक्र के अनुसार जाते जाते हैं परन्तु परमेश्वर पर दृढ़ श्रद्धा का होना स्थायी धन है जो लोक और परलोक दोनों जगह काम आता है।

जिस प्रकार एक धर्मात्मा न्यायकारी राजा प्रजा के दुष्ट लोगों को दण्ड इसलिये देता है कि वे बुरे काम छोड़कर सन्मार्ग पर आजायें। इसी तरह परमात्मा जहां न्यायकारी है वहां उन जैसा दयालु भी कोई दूसरा नहीं है। दुःख कष्ट चिन्ता-विपत्ति मे सब एक प्रकार के दण्ड हैं जो हमें आकर यह समझाते हैं कि भविष्य में ऐसा कर्म न करना जिससे दुःखों का शिकार बनना पड़े। विपत्ति को भी धैर्य के साथ निकाल देने का प्रयत्न करना चाहिये वह जाने के लिये ही तो आती है।

स्वर्ण को यदि आग में तपाया न जाय तो वह कैसे शुद्ध होगा? कष्ट-क्लेश भी मन को तपाने की उपयोगी आंच होते हैं-आपत्ति में मन कोमल और दयामय बन जाता है।

सांसारिक जीवन में सुख और दुःख हर समय आंख-मिचौनी खेला ही करते हैं। इसी खेल को देखते रहने में ही जीवन का आनन्द मिलता है। कोई एक प्रकार का दुःख भी तो नहीं होता। दुःख

भी बदल-बदल कर आते हैं। कभी शत्रु का सामना हो जाना, रोजगार में घाटा पड़ना, घर में धन का अभाव होना, मांगने पर उधार न मिलना, स्त्री दुमाहि का मरजाना, मकान में आग लगना एक विपदा तो नही! नदी बह रही है उसमें उठने वाली लहरों को कौन रोक सकता है? दिन रात, सर्दी-गर्मी मानापमान-निन्दा-स्तुति-हर्ष-शोक ये सब प्रतिद्वन्द्वी भाव हैं इनके कारण मनुष्य को हताश नहीं होना चाहिये। मन का स्वभाव ही यही है कि वह पग पग में नवीनता चाहता है। इन सुख-दुःख इत्यादि लहरों के रूप में उसे नूतनत्व मिल जाती है और वह बड़े सन्तोष पूर्वक धैर्य के साथ जीवन की गाड़ी को चलाता रहता है। किसी ने क्या ही सुन्दर लिखा है:-

रहा किसी का न कुछ ठिकाना, घड़ी में कुछ है घड़ी में कुछ है।।
कहां है दारा कहां है अकबर, कहां है अर्जुन कहां युधिष्टर।
हुए यहां से सभी रवाना, घड़ी में कुछ है घड़ी में कुछ है।।

जब तक शरीर में प्राण दौड़ धूप कर रहे हैं तब तक दुःख सुख के दृश्य आते और आते रहेंगे। वह मनुष्य क्या जो इनकी तरंगों में बह जाय। तैराक वह है जो लहरों को चीर कर अपना मार्ग बनाता है और अपने लक्ष्य स्थान पर पहुँचकर जय नाद करता है। विश्व में वीर बनकर जीना है। विपत्तियों के साथ दो-दो हाथ करने हैं। वह फूल क्या जो खिलने से पूर्व मुरझा जावे। नर वह है जिसके चरणों में संसार रूपी संसार (मगरमच्छ) लोट पोट हुए रहते हैं।

एक बात इसमें ध्यान देने की है कि ऐसी क्षमता, भक्ति व ताकत जीव में सन्त-सत्पुरुषों की संगति से आती है। महापुरुष ही भवसागर की एक-एक लहर से परिचित होते है। उन्हें जन्म-मरण से कोई सरोकार नहीं रहता। केवल संसार के इन दुःखी जीवों को शुभ मार्ग दर्शाने आते हैं। उनके श्री चरणों में बैठकर सत्संग का श्रवण-उनके पवित्र दर्शन, उनके चरणों की सेवा, उनकी आज्ञा में रहना, उनका ध्यान पूजन आराधना मे है अचूक साधन जिन्हें करने से मनुष्य में दिव्य शक्तियों का संचार होने लगता है और ऐसे गुरु शिष्य प्राणी सत्यवादी राजा हरिशचन्द भक्त प्रहलाद, धर्मात्मा विभीषण - अजात शत्रु, राजा युधिष्ठर की तरह सुख-दुःखों की घाटियों में मुस्काते हुए पार कर जाते है।

जीवन एक यात्रा है। सम्पूर्ण प्राणी एक प्रकार के पथिक हैं जो अपने घर को छोड़कर किसी दूसरे देशों में निवास कर रहे हैं। अब विचार की बात यह है कि जब हम सभी ही विदेश में स्थित हैं और अपने निज धाम में नहीं फिर हम क्यों पूर्ण सुख की आशा करें? सुख तो अपने निवास-स्थान में हुआ करता है। स्वतंत्रता और स्वच्छन्दता से जिसने जीवन बिताना हो वह अपने घर में रहे। पराये घर में, दूसरी भूमि पर किसी और के देश में रहते हुए कभी भी निश्चिन्तता नही हो सकती। मनुष्य परमुखापेक्षी (दूसरे का मुंह देखना) बन जाता है। जिसके पास डेरा लगाया है, जिस राजा के देश में निवास किया है तो अवश्य ही वहां के नियम-उपनियम अथवा विनिमय (खास कानून) मानने ही पड़ेंगे। उसे देश की भाषा, प्रथाएं, रीति रिवाज, सिक्के अंगीकार करने ही होंगे।

चौरसी लाख योनियां क्या है? भटकन ही भटकन - अनेक प्रकार के शरीर क्या हैं-विविध आकार-प्रकार के घर-जिनमें जीवात्मा रूपी यात्री को रहना पड़ता है। यह देश देशान्तरों का पर्यटन लगा ही रहेगा जब तक जीवात्मा अपने देश में निज घर में आत्मस्वरूप में लौट न जाय। सन्त-सत्पुरुष, अवतारी पुरुष, दिव्य विभुतियां इस भूमण्डल पर क्यों आती है? केवल इस उद्देश्य से कि यह मनुष्य अपने इस मानव-चोले में अपने स्वरूप को पहचान ले-इस शरीर के होते होते बाहर की भटकन छोड़ दें- निजधाम की ओर मुख करले। सन्त सद्गुरु जीवों को समझाते है "ऐ परमात्मा के प्यारो! तुम ईश्वर की ओर मुख करो। उसे अपने नयनों में बसाओ। उसकी प्रतिष्ठा अपने हृदय मन्दिर में कर लो। तुम्हारी संपूर्ण चेष्टायें और समस्त चिंतन प्रणाली का लक्ष्य केवल परमात्मा बन जाये। साथ ही जीव को यह भी समझ लेना चाहिये कि परमात्मा और सद्गुरु में रत्ती भर भी अन्तर नहीं होता। हां! निर्गुण ब्रह्म ही सगुण साकार रूप में सद्गुरु नाम रखा कर आते है। इसलिये जो निराकार परमेश्वर की प्राप्ति सुगमता से करना चाहे वह सन्त सद्गुरु जी में टल-अचल विश्वास रखे-उनकी ही आज्ञा में चले, उनके वचनों का पालन करें वह सगुण ब्रह्म की प्रसन्नता प्राप्त करके निर्गुण ब्रह्म को पा लेता है।

दोहा :- सुख के माथे सिव पड़े, जो नाम हृदय से जाय।
कवितारी का दुःख को, पल-पल नाम रटाय।।

माता कुन्ती ने भगवान श्री कृष्ण चन्द्रजी से यही वर चाहा था कि "ऐ भगवान! आप मेरी झोली में विपदा यें ही डाल दो क्योंकि आप आपत्काल में ही स्मरण ही आते हैं।" राजर्षि भीष्म पितामह जी ने शर-शय्या पर लेटे हुए श्याम-सुन्दर भगवान से यह याचना की थी कि "जितने मेरे शुभ अथवा अशुभ कर्म है उन सभी का फल मुझे इसी समय प्राप्त हो जाय जिससे फिर मुझको इस सुख-दुःख भरे जगत् में न आना पड़े, अर्थात् मैं निर्वाण-पद को पाऊं।

जीवन को ऐसा बिताना चाहिये कि मृत्यु भी जीवन की याचना करे। मौत कोई ऐसी वस्तु नहीं जो भय दायिनी हो दिन के पीछे रात का आना कोई भय प्रद नहीं होता। निस्त्र काल से में ही अरुणदय (पौफटना) का जन्म होता है। और दिवस के प्रकाश में से रजनी फूटा करती है। इसी प्रकार मृत्यु की उत्पत्ति जीवन के विशाल प्रवाह में से हो जाती है और जीवन भी तो मौत का सहारा चाहता है। मृत्यु और जन्म दोनों एक दूसरे के पूरक है अर्थात् दिन की कमी को रात और रात्रि की न्यूनता को दिवस पूर्ण करने के लिये ही आता है। यदि हाथ की हथेली है तो उसकी पीठ भी तो है-हथेली और पीठ दोनों मिलकर हाथ के सौन्दर्य को स्थिर रखती है। जन्म और मरण भी दो पक्ष है-जीवन के। एक शुक्ल पक्ष और दूसरा कृष्ण पक्ष-यद्यपि दोनों पक्ष एक दूसरे से भिन्न आकार प्रकार के है किन्तु दोनों के आने जाने से ही जीवन की सुन्दरता बनी रहती है। विपत्ति का अनुभव जिसने कभी किया ही न हो वह क्या जाने कि सम्पत्ति किस बला का नाम है? यही एक ऐसा आकर्षक निगूढ़ और व्यापक तत्व है जिसके कारण समस्त लोकों के प्राणी अपने अपने-जीवन क्रेन्द्र

पर मूक भाव से चक्कर काट रहे हैं।

हमें भी महापुरुषों के वचनों पर गम्भीर चिन्तन करके उनके रुचिर एवं शिक्षाप्रद भावों को अपने हृदय-पटल पर अंकित कर लेना चाहिये। वे ही जीवन मार्ग में हमें प्रकाश देने वाले है। महासागर में सैंकड़ों ही जहाज आते जाते है। कभी कहीं दैववश तूफान आगया तो उन जलयानों को डूबने, टूटने अथवा उबर जाने का भय उपस्थित हो जाता है। कई सुरक्षित रहकर अपनी मंजिल की तरफ आगे बढ़ जाते हैं।

ज्ञानी

जिसे मैं ब्रह्म हूं यह ज्ञान हो जाता है वह सर्वरूप बनता है। ऐसी विश्व रूप महान् आत्मा को दुनियाँ भर में सज्जनों द्वारा होने वाले समस्त सत्कर्म और दुष्टों की ओर से किये जाने वाले समस्त असत् एवं दुष्कर्म, सब मेरे ही हैं ऐसा जान पड़ना स्वाभाविक है। सारी दुनिया का कोई चोर चोरी करे अथवा हत्यारा हत्या करे। शास्त्रीय भाषा में वह सब इस महात्मा द्वारा किये माने जावेंगे। कितनी ही चोरियाँ या हत्यायें महात्मा के हाथ से होती हैं फिर भी उनसे उसका बाल भी बाँका नहीं होता। यह भी उसी ज्ञान की महिमा है जिसके अन्तर्गत सारे संसार के दुष्कर्म इस महापुरुष के सिर मढ़े गये थे। इसलिए स्थित-प्रज्ञ की इस शास्त्रीय भाषा को व्यावहारिक भाषा समझना उचित न होगा।

षट् दर्शनों में योग का महत्व

डॉ० ऋषिराम शर्मा, एम. एस-सी., पी-एच. डी. वाराणसी

संसार का प्रत्येक प्राणी केवल एक ही कार्य में व्यस्त है उसी की पूर्ति के लिये जीवन भर कोल्हू के बैल की तरह लगा रहने पर भी अपूर्णावस्था में ही अपनी जीवन लीला समाप्त कर देता है। यही सांसारिक जीवन का रहस्य है आप कहेंगे कि इस संसार में तो अनन्त प्राणी हैं अनन्त ही उनकी विचार धारायें हैं। **मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना:** के अनुसार अनन्त ही उनके कार्य कलाप है। और अनन्त ही उनके उद्देश्य हैं। या यह कहिये कि अनन्त विभिन्नता ही संसार का रूप है। किन्तु आप थोड़ा विचार करें तो व्यावहारिक जगत के सभी प्राणी अपने मन के अनुकूल पदार्थों को एकत्र करने और प्रतिकूल पदार्थों को हटाने में लगे हैं। और इन्हीं अनुकूलता और प्रतिकूलता की वृत्तियों का प्राणियों के अन्तः करणों पर पड़ने वाला मायावी स्वरूप अनन्त विभिन्नता दर्शाता है। क्या कभी आपने इसका विश्लेषण एवं मनन किया है। कि इस विभिन्नता रूप कार्य का अधिष्ठान रूप कारण कौन है? बस इसी ग्रन्थि के सुलझ जाने पर यही भोग विलास में फंसाने वाला दृश्य जगत मोक्ष का दाता बन जाता है।

सर्वप्रथम हमें कारण और कार्य के सम्बन्ध पर विचार करना है। वस्तुतः कारण ही कार्य का रूप धारण कर लेता है। किन्तु इस क्रिया में एक भ्रान्ति का आवरण स्वतः उत्पन्न होता है जो कारण को दृष्टि से छिपा कर केवल कार्य का आभास कराता है। जैसे आप किसी बड़े वस्त्र विक्रेता की दुकान में जाकर उससे हजारों प्रकार के सूती कपड़े माँगते जाये और वह आपको बराबर दिखाता जायेगा किन्तु यदि आप उससे कहें कि आपके पास रुई होगी तो वह तुरन्त मना कर देगा और आप यह अच्छी तरह जानते हैं कि रुई ने ही हजारों प्रकार के कपड़ों का रूप धारण कर उसकी दुकान को भर रखा है। यदि उन कपड़ो में से रुई का अंग निकाल लिया जाये तो कुछ भी शेष नहीं रहेगा। अतः इस उदाहरण में रुई अधिष्ठान रूप कारण है। और सभी कपड़े उसका कार्य है और जैसे ही कारण रुई कपड़े रूप कार्य में परिवर्तित हो गई एक ऐसा आवरण भी बुद्धि पर स्वतः पड़ गया जिसने रुई की अनुपस्थिति का आभास करा दिया। दृष्टि से कारण के छिपते ही उपाधि भेद से कार्य में हजारों विभिन्नतायें प्रदर्शित हो गईं। यह दृश्य जगत भी मायाकृत कार्य है। जिसका कारण रूप अधिष्ठान सच्चिदानन्द परमात्मा है। उस चिद् शक्ति का सान्निध्य पाकर त्रिगुणमयी माया ने ही अनन्त विभिन्नता का आभास दर्शाया है। जैसे प्रकाश की किरणों का सान्निध्य पाकर दर्पण अपने सामने आने वाले माध्यम के अनुसार विभिन्न प्रकार के रंग बिरंगे आभार प्रदर्शित करता है चित्रपट पर दर्शकों के लिये एक कृत्रिम दुनियाँ दिखा दी जाती है जो नासमझ बच्चों को सत्य ही लगती है। विभिन्न शक्ति वाले दर्पणों के आभासों की शक्ति और कार्य भी विभिन्न होते हैं। यदि आप सूक्ष्म दृष्टि से विचार करो

तो यह भगवान की गुणमयी माया भी विभिन्न शक्ति वाले अन्तः करण रूपी दर्पणों में चिदानन्द परमात्मा की शक्ति का सान्निध्य पाकर अनन्त विभिन्नता का आभास ही दृश्य जगत के रूप में दिखती है। स्वयं जगदात्मा कृष्ण ने गीता में कथन किया है कि –

ईश्वर सर्वभूतानाम् हृत्देशे अर्जुन तिष्ठति भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।।

उपनिषदों के कथनानुसार- **शक्तिद्वयं हि मायायाः विक्षेप शक्ति लिङ्गादिब्रह्माण्डन्तं जगत् सृजेत्। आवरणोत्यपर शक्तिः या संसारस्य कारणम्।**

पंच भूतात्मक दृश्य जगत अनेक लोक लोकान्तर एवं मन, बुद्धि चित्त अहंकार और इन्द्रियों आदि का गुणात्मक लिंग शरीर सभी माया की विक्षेपशक्ति का कार्य है। और इस कार्य के अधिष्ठान सच्चिदानन्द शक्ति को छिपाकर केवल आनन्द विभिन्नता का उपाधिमय दृश्य जगत की सत्यता का आभास कराने वाली माया की आवरण शक्ति है। जैसे स्वप्नावस्था में निद्रावरण के कारण से सर्वथा असत्य स्वप्न जगत सत्य प्रतीत होता है उस अवस्था में यदि सर्प काटने आता है या कोई जंगली जानवर आक्रमण करता है अथवा अन्य कोई भयानक घटना घटती है तो बचाव के लिये सभी यथासंभव प्रयत्न किये जाते है जो जाग्रत अवस्था में किये जाते और उस स्थिति में यह ज्ञानशून्य हो जाता है कि हम तो अपने घर में सकुशल पलंग पर लेटे हुये हैं। जाग्रत अवस्था के दृश्य जगत के ज्ञान की सर्वथा भुलाकात केवल स्वप्न जगत की सत्यता दिखा देना केवल निद्रावरण का ही परिणाम है। और जब तक यह निद्रावरण बना रहता है तब तक स्वप्नज्ञान सत्य है और जाग्रत जगत एवं उसका ज्ञान सत्य हो गया।

बस इसी प्रकार माया की आवरण शक्ति के प्रभाव में यह दृश्य जगत और उसका ज्ञान सत्य है और इस आवरण के हटते ही यह भी स्वप्नवत् मिथ्या हो जाता है। यही एक उपदेश है **'ब्रह्म सत्यम् जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः'** अर्थात् अधिष्ठान रूप ब्रह्म सत्य ही है। मिथ्या उपाधि भेद मायाकृत है। किन्तु ज्ञान का यह उपदेश निरर्थक है। और उसी प्रकार व्यर्थ है जैसे पलंग पर लेटे हुये का जाग्रत अवस्था का ज्ञान स्वप्नावस्था में पड़े जीव के लिये व्यर्थ है। इस ज्ञान की सार्थकता तो तभी है जब माया की आवरण शक्ति का प्रभाव हट जाय। इसके लिये सभी मार्गियों को योग की शरण में आना होगा। उपनिषदों में यही घोषणा कर दी है कि **'योगहीनं कुतः ज्ञानम्'** ज्ञान मार्ग के प्रवर्तक आदि जगतगुरु शंकराचार्य ने स्वयं स्पष्ट कर दिया है कि **'न गच्छति विनापानं व्याधिरौषध शब्दतः विनापरोक्षानुभव ब्रह्म शब्देर्न मुच्यते'** अर्थात जैसे बिना औषध का पान किये केवल उसका नाम लेने से रोग दूर नहीं होता है वैसे ही **अहं ब्रह्मास्मि** आदि महावाक्यों के शब्द ज्ञान से किसी की मुक्ति नहीं होती। जब तक वह योग की निर्बीज असम्प्रज्ञात समाधि में स्थित होकर अपने स्वरूप का साक्षात्कार नहीं कर लेता। तभी तो जगदात्मा भगवान कृष्ण को अपने मुख से कहना पड़ा कि **'जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते'।**

जीव की समस्त दुःखों से क्लेशों से कब मुक्ति होती है। वह कब मोक्ष पद का भागी

होता है इसका निरूपण करते हुये अष्टावक्र जी ने कहा है कि **'यदि देह पृथक्कृत्य चिति विश्रम्य तिष्ठसि अधुनैव सुखी शान्तो बन्धमुक्तो भविष्यसि'** अर्थात् यदि मायाकृत देह से अपने को पृथक करके अपने चिदात्मस्वरूप में स्थित हो जाओ तो अभी सुखी शान्त और माया के सब बन्धनों से मुक्त हो जाओगे किन्तु समस्या है कि देह से पृथक कैसे हुआ जाय ? इस समस्या का हल हमें केवल योग में मिलता है।

अब प्रश्न उठता है कि योग क्या है भगवान पतंजली ने योगाश्चित्तवृत्ति सूत्र से योग की परिभाषा की है इस सूत्र का तात्पर्य यह है कि अन्तःकरण में उठने वाली समस्त वृत्तियों पर निरोधात्मक वंशीकार योग है यद्यपि सुषुप्ति अवस्था में भी वृत्तियों का निरोधात्मक वंशीकार नहीं, अपितु बीज रूप में वृत्तियां विद्यमान रहती हैं और जागने पर यह अनुभूति कि खूब सुख से सोया कुछ भी पता नहीं रहा उस अवस्था का वृत्ति जन्यज्ञान है जो भी अनुभव हम मन और इन्द्रियों के द्वारा करते हैं वह सब वृत्ति जन्यज्ञान है अर्थात वृत्तियां ही तदाकार होकर समस्त ज्ञान कराती हैं और जब तक अन्तःकरण में वृत्तियाँ उठती रहती है तब तक कूटस्थ सर्वसाक्षी चिदात्मा वृत्याकार में ही प्रतिविम्बित होता है और जैसा कि भगवान पतंजली के सूत्र **'वृत्ति सारूप्य मितरत्र'** से प्रतिपादित है जब योग स्थिति में वृत्ति निरोध हो जाता है तो चिदात्मा वृत्याकार न होकर अपनी निर्विकार स्वरूप स्थिति में रहता है जैसा कि योग का फल निरूपण करते हुये भगवान पतंजली ने लिखा है कि **'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्** यह वृत्ति निरोधावस्था तीनों जाग्रत स्वप्न एवं सुषुप्ति अवस्थाओं से सर्वथा भिन्न एक अनुभव गम्य स्थिति है, जिसे परा स्वरूपावस्था से सम्बोधित किया जाता है, उपनिषदों में इन परास्वरूपावस्था का उल्लेख किया गया है कि मशान्तमवसंकल्प या शिलावद्वस्थितिः जाग्रन्निद्राविनिर्मुक्ता सा स्वरूप स्थितिः परा।

संसार का कोई भी प्राणी किसी प्रकार की साधनाऐं करता रहे किन्तु जब तक उसके मन में एकाग्रता का उदय नहीं होता तब तक उसका योग में प्रवेश नहीं माना जाता, क्योंकि वृत्ति निरोध मन की एकाग्रता का ही परिणाम है। मन को एकाग्रतोन्मुखी बनाने के लिये भगवान पतंजली ने अष्टांग योग का निरूपण किया, इनमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार यह पांच योग के बहिरंग कहलाते हैं और धारणा, ध्यान, समाधि, यह तीन योग के अन्तरंग कहे जाते हैं इन अंगों का विस्तृत वर्णन भगवान पतञ्जलि देव ने अपने योग दर्शन में किया है। योग दो भागों में विभाजित किया गया है सम्प्रज्ञात योग और असम्प्रज्ञात योग। धारणा सिद्ध हो जाने पर मन के अन्दर योग में प्रवेश करने की योग्यता आ जाती है तभी अन्तर्मुखी वृत्ति वाला एकाग्रमन सम्प्रज्ञात योग का अधिकारी बनता है। क्रमशः सम्प्रज्ञात योग की चार भूमिकायें हैं। वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत और अस्मितानुगत इनका विस्तृत, वर्णन करना तो इस लघु लेख में सम्भव नहीं है। संक्षेप में वितर्कानुगत योग में योगी पंच महाभूतो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश के स्थूल रूपों का और उनके गुण गन्ध रस, रूप स्पर्श और शब्द का प्रत्यक्ष करता है और तत्सम्बन्धी अनेक दिव्य अनुभव करता है। इसमें भी जब तक ध्याता, ध्यान और ध्येय अलग अलग आसित होते है उसे सवितर्क योग और जब

तीनों ध्याता, ध्यान और ध्येय ध्येयाकार हो जाते हैं तो उसे निर्वितक योग कहते हैं। निर्वितक योग की पराकाष्ठा में पहुँच जाने पर योगी का मन सूक्ष्म विषयों में प्रवेश करता है और वह पञ्चभूतों के स्थूल रूप की अपेक्षा उनकी सूक्ष्म तन्मात्राओं का और उनके सूक्ष्म गुणों का प्रत्यक्ष होने लगता है। इसे विचारानुगत योग कहते हैं। इसके भी पूर्ववत् सविचार और निर्विचार दो भेद हैं। इस योग में सूक्ष्मविषयों के दिव्य अनुभव होते हैं। सूक्ष्म मन, बुद्धि एवं सूक्ष्म इन्द्रियों तथा अहंकार का प्रत्यक्ष होता है। सदैव सत्य को ग्रहण करने वाली ऋतम्भरा प्रज्ञा की प्राप्ति होती है। ऋतम्भरा के दृढ़तर अभ्यास करते करते बुद्धि की दर्शन शक्ति और द्रष्टास्वरूप में एकाकार हो जाती है तो जड़ चेतन ग्रन्थि खुल जाती है। यही अस्मितानुगत योग है। इस योग में ऋतम्भरा प्रज्ञा द्वारा अन्य संस्कारों का प्रतिरोध होता जाता है और माया शक्ति के आवरण का आवरण-भंग होता चला जाता है। जिससे सभी दुःख दायी मायिक पदार्थों से पर वैराग्य की प्राप्ति हो जाती है। दृष्टानुश्रविक विषयों में वितृष्ण होकर पुरुष विवेक ख्याति को प्राप्त करता है। इसकी पराकाष्ठा होने पर योगी असम्प्रज्ञात योग को प्राप्त करता है और अपनी परा स्वरूपस्थिति को पा जाता है।

परा स्वरूपस्थिति को प्राप्त करने के लिए योग में दो उपाय हैं–

1. साधन योग 2. सिद्ध योग

साधन योग तो **'श्रद्धावीर्य स्मृति समाधि प्रज्ञा पूर्व कमित रेषाम्'** के अनुसार योग की भूमिकाओं को क्रमशः पार करते हुये प्राप्त होता है। और सिद्धयोग महासिद्धपुरुषों की कृपा से प्राप्त होता है। इन सब का रहस्य केवल गुरुदेव के चरणों में रहने से समझ में आता है।

मैं तो कुछ विशेष जानता नहीं हूँ। केवल गुरुदेव की आज्ञा से और गुरु चरणों की कृपा पाकर जो कुछ बुद्धि में भाव थे उन्हें लेखनी बद्ध करने का प्रयत्न किया है।

परमात्मा की व्याख्या

कुछ ज्ञानियों ने कहा "परमात्मा प्रकाश की तरह है।" कुछ ज्ञानियों ने कहा: "परमात्मा महान अंधकार की भांति है।" तुम्हारी पसंद की बात है। तुम अगर थोड़े भयभीत व्यक्ति हो, तो तुम कहोगे: "परमात्मा प्रकाश की भाँति है।" अगर तुम थोड़े निर्भीक व्यक्ति हो, तो तुम कहोगे: "परमात्मा गहन अंधकार की भांति है।

श्री सिद्ध गुफा की पावन-रज

श्री अशोक द्विवेदी (झांसी)

-□-□-

श्री सिद्ध गुफा की पावन-रज को, सत्-सत् नमन करूँ।
योगेश्वर प्रभु रामलाल के पद नख हृदय धरूँ॥

श्री सिद्ध गुफा की पावन-रज ने, कितने पतितों को तारा।
जिसने भी यहाँ शीश झुकाया, प्रभु जी का मिला सहारा॥
अभय बनाया पावन-रज ने, महिमा कहाँ लौं कहूँ।
श्री सिद्ध गुफा की पावन-रज को, सत्-सत् नमन करूँ॥

जीवन की बुझती ज्योति, यहाँ आकर ज्वलित हुई है।
मुरझी हुई जीवन आशायें, इस आँगन में महक उठी हैं॥
श्री गुरुवर के "रज प्रसाद" की सुध ही न बिसरूँ।
श्री सिद्ध गुफा की पावन-रज को, सत्-सत् नमन करूँ॥

मानव जब सारे प्रयत्नों को कर, लाभ नहीं कुछ पाता है।
तब प्रभु के चरणों की पावन रज से, आशा की किरण जगाता है॥
प्रभु रामलाल की अमर धरोहर, अपने शीश धरूँ।
श्री सिद्ध गुफा की पावन-रज को, सत्-सत् नमन करूँ॥

'सिद्धयोग' प्रकाशन का आय-व्यय विवरण

सन् १९९६-९७ (वर्ष २९ वाँ)

आय

रोकड़ जमा कार्यालय में	रु०	४६१-००
बैंक शेष जमा ७-३-९६ में	रु०	७१४८-४९
ग्राहक शुल्क—		
वार्षिक एवं द्विवार्षिक (वर्ष ३०वाँ के रु० १३३५-०० सहित)	रु०	३४६९५-००
आजीवन ग्राहक शुल्क	रु०	७१६१-००
सहर्ष सहयोग राशि (गुरुभाई-बहनों से प्राप्त)	रु०	८०५१-००
ग्राहक शुल्क शेष उधार वापसी एवं एक प्रति बिक्री से	रु०	१३१-००
बैंक ब्याज से प्राप्त	रु०	५६३-००
योग	रु०	५८२१०-४९
वर्ष १९९६ का एडवांस प्रेस को दिया गया अप्रैल १९९६ के अंक-१ हेतु	रु०	७२००-००
वर्ष १९९७ का एडवांस प्रेस में रहा	रु०	२९९-००
कुल योग	रु०	६५७०९-४९

व्यय

प्रेस से सिद्धयोग प्रकाशन अप्रैल १९९६ से फरवरी-मार्च १९९७ तक बिल प्राप्त राशि	रु०	५५९४१-००
शेष प्रेस में जमा रहा	रु०	२६९-००
	रु०	५६२१०-००

प्रेस को बिलों की भुगतान राशि अप्रैल ९६ से फरवरी मार्च ९७ तक ड्राफ्टों द्वारा	रु०	५६२१०-००
कार्यालय हेतु स्टेशनरी हैण्ड स्टैपल मशीन आदि खर्च	रु०	२८९-००
पत्राचार-डाक-रजिस्ट्री खर्च	रु०	१०५-५५
सिद्धयोग डिस्पैच हेतु डाक टिकटें (दर १५ पैसे व दर ५० पैसे लाइसेंस नवीनीकरण न होने के कारण)	रु०	३०८१-००
लाइसेंस नवीनीकरण हेतु जन० ९६ तक टिकटों का अन्तर जमा कराया व अन्य खर्च	रु०	२७५-००
प्रेस हेतु ड्राफ्ट बनवाने में बैंक खर्च	रु०	१९०-००
अन्य फुटकर खर्च पत्रिकायें भेजने हेतु रिक्शा, आगरा प्रेस आना-जाना, टैम्पो, बस आदि खर्च	रु०	३९९-००
योग	रु०	६०५४९-५५
बैंक शेष	रु०	५०३६-४९
रोकड़ जमा कार्यालय में	रु०	१२३-४५
कुल योग	रु०	६५७०९-४९

नोट—प्रकाशन में आये घाटे की पूर्ति विभिन्न स्थानों, बनारस, गोरखपुर, जगाधरी, आदि के गुरुभाई-बहनों के सहयोग राशि एवं आजीवन सदस्यता से की गई है।

(आजीवन सदस्यता का मूलधन रु० ३५००-०० व ब्याज रु० ८३९-०० तथा नई आजीवन सदस्यता का रु० १५५०-०० कुल रु० ५८८९-०० जमा है।) —व्यवस्थापक

सिद्धयोग के आजीवन सदस्य

निम्नलिखित सदस्यों ने "सिद्धयोग" की आजीवन सदस्यता ग्रहण कर, इस कार्य में अधिक सहयोग देकर इस सिद्धयोग पत्रिका के महत्व को आगे बढ़ाने का संकल्प लिया है, "सिद्धयोग" मासिक पत्रिका बराबर इसी प्रकार पाठकों को मिलती रहे, सद्गुरुदेव के लेख, प्रवचन व योग्य विद्वानों द्वारा दिये गये लेखों को पढ़कर लाभान्वित हो सकें। इसके लिए हम सभी को प्रयास करना चाहिये, ऐसा अनुरोध करते हैं। —व्यवस्थापक

नाम	पता
१. श्री श्रीकृष्ण शर्मा	रोहतक
२. श्री सन्तोष कुमार बसी	गुड़गाँव
३. श्री गजराज सिंह	कानपुर
४. श्री आत्माप्रसाद सिंह एडवोकेट,	बनारस
५. श्री जगदीश गर्ग	चण्डीगढ़
६. डा० विजयसिंह	गोरखपुर
७. श्री गयाप्रसाद नामदेव	भोपाल
८. श्री विन्ध्यवासिनीसिंह एडवोकेट,	बनारस
९. श्री केशव उपाध्याय	बनारस कैण्ट
१०. ,, दामोदर प्रसाद ओरवानी	झाँसी
११. ,, ब्रजनन्दन तिवारी	झाँसी
१२. ,, बलदेव कुमार कुकरेजा	झाँसी
१३. ,, रमेश चन्द मेहता	मण्डी (H. P.)
१४. श्रीमती सुदर्शन कुमारी	फरीदाबाद
१५. ,, विद्या कौशल	मण्डी (हि० प्र०)
१६. श्री नगेन्द्र प्रसाद बाजपेयी	शिवपुरी
१७. ,, विश्वनाथ दयाल	कानपुर
१८. ,, आर० पी० दुबे	गोरखपुर
१९. ,, नारायण दत्त शर्मा	कानपुर
२०. डा० कैलाश नाथ शर्मा	वाराणसी
२१. आपरेटर रोहताश शर्मा	56-A P. O.
२२. श्री श्रद्धाचार्य कौशिक	दिल्ली
२३. मैं० शान्ती हैण्डलूम इण्डस्ट्रीज	पानीपत
२४. श्री ब्रजमोहन वशिष्ठ	जगाधरी
२५. ,, कुन्दन ठेकेदार	वाराणसी
२६. श्री दयालु मुनि जी	भिवानी
२७. ,, रमेशचन्द दीक्षित	जयपुर
२८. ,, राजेश गर्ग	पानीपत
२९. ,, राजेश श्रीवास्तव	आगरा
३०. ,, जयप्रकाश बंसल	पानीपत
३१. मैं० श्यामबिहारी लाल अग्रवाल,	झाँसी
३२. श्री सत्यप्रकाश गुप्ता	भोपाल
३३. ,, के० के० शर्मा	नई देहली
३४. ,, नरेन्द्र चौधरी	शाहदरा
३५. ,, गंगेश कुमार	दिल्ली
३६. ,, विनय सिजरिया	अहमदाबाद
३७. ,, जगदीशचन्द्र वर्मा	अहमदाबाद
३८. ,, अशोक वर्मा	दिल्ली
३९. ,, रामावतार सुगंध	दिल्ली
४०. ,, विनय कुमार अग्रवाल	दिल्ली
४१. ,, विद्यारण्य शर्मा	नई दिल्ली
४२. ,, युवराज सिंह	जयपुर
४३. डा० आर० एस० चन्देल	उदयपुर
४४. श्रीमती शिवानी नगेश पाठक	अहमदाबाद
४५. श्री सज्जन कुमार अग्रवाल	झरिया
४६. ,, अनल चावला	दिल्ली
४७. ,, विष्णुदत्त शर्मा	मुम्बई
४८. ,, वी० के० सक्सेना	भिण्ड
४९. ,, विवेक बंसल	गाजियाबाद

SIDDHAYOGA Regd. No. L AG. 008 APRIL 1997

प्रेषक कार्यालय :—

सिद्धयोग

योग-सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग-प्रशिक्षण केन्द्र सवाई (सत्मादपुर) आगरा

PRINTED MATTER
Book Post

श्री

चित्त का त्याग वास्तविक त्याग है

चित्तत्यागं विदुः सर्वत्यागं त्यागविदांवर ।
तस्मिन्सिद्धे महाबाहो सत्यं किं नानुभूयते ॥
चित्ते त्यक्तेलयं याति द्वैतमैक्यं च सर्वतः ।
शिष्यते परमं शान्तमच्छमेकमनामयम् ॥

(योगवासिष्ठ)

सर्व त्याग देने पर भी त्याग नहीं होता। चित्त-त्याग करना ही सर्व त्याग है। यह चित्त त्याग सिद्ध हो जाने पर सत्य अर्थात् आत्मतत्त्व अनुभूत होता है। कारण कि चित्त त्याग होते ही द्वित्व एकत्व आदि सर्व प्रकार का ज्ञान उपशम होता है, उस समय जो कुछ अवशेष रहता है वही परमात्मा है।

प्रकाशक एवं मुद्रक—विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिन्टिंग प्रेस, बसई कलाँ, ताजगंज, आगरा के लिये राष्ट्रीय ब्लाक एवं प्रिण्टिंग वर्क्स से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई आगरा से प्रकाशित। फोन : 330426